सहजानंद शास्त्रमाला

पंचाध्यायी प्रवचन

भाग 3

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ''सहजानन्द'' महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

पञ्चाध्यायी प्रवचन

[भाग ३, ४, ५]

प्रवक्ता :
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द जी' महाराज

प्रबन्ध-सम्पादक :
बैजनाथ जैन, ट्रस्टी सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला
यादगार बड़तला, सहारनपुर

●

प्रकाशक :
मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला
५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

●

मुद्रक :
पं० काशीराम शर्मा 'प्रफुल्लित'
साहित्य प्रेस सहारनपुर

न् १९७२] सर्वाधिकार सुरक्षित [न्योछावर ५ रु.

पञ्चाध्यायी प्रवचन

[तृतीय भाग]

●

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक

श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

●

उक्तं गुणपर्ययवद्द्रव्यं यत्तद् व्ययादियुक्तं सत्।
अथ वस्तुस्थितिरिह किल वाच्याऽनेकान्तबोधशुद्ध्यर्थम् ।२६१।

अनेकान्तपद्धतिसे वस्तुस्वरूपके विशेष विवरण करनेका संकल्प— अबसे पहिले उक्त कथनमें यह बात सिद्ध की गई कि जो गुण पर्याय वाला द्रव्य है वही उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत् है। गुणपर्ययवद् द्रव्यं और उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्, ये दोनों लक्षण एक दूसरेके अभिव्यंजक हैं, प्रकट करने वाले हैं। ये दो भिन्न भिन्न लक्ष्यके लक्षण नहीं हैं। एक सत्से पदार्थको ही दो प्रकारसे लक्षित किया गया है। इस बातकी पुष्टि भली प्रकार की और यह संक्षेपरूपसे वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन हुआ था। अब वस्तुस्वरूपका विशेष विचार करेंगे जिससे अनेकान्त ज्ञानकी भी सिद्धि हो और वस्तुस्वरूप भी बहुत विस्तारपूर्वक विदित हो। वस्तुका स्वरूप यथार्थतया अनेकान्तके अवलम्बनसे ही समझमें आ सकता है, क्योंकि वस्तु स्वयं तो जिस रूप है सो ही है, अवाच्य है। उसे जब हम वाच्य बनाना चाहते हैं तो हमें अनेक प्रतिपक्ष धर्मों सहित भी उसपर विचार करना होगा। यों अनेकान्तकी सिद्धिके लिए वस्तुस्वरूपका विशेष विचार करनेका यहाँ संकल्प किया है।

स्यादस्ति च नास्तीति च नित्यमनित्यं त्वनेकमेकं च।
तदतच्चेति चतुष्टययुग्मैरिव गुम्फितं वस्तु ॥ २६२ ॥

वस्तुकी सप्रतिपक्ष चार युगलोंसे गुम्फितता - वस्तु चार युगलोंसे गुम्फित है। पहिला युगल है—कथंचित् है कथंचित् नहीं है। दूसरा युगल है—कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है। तीसरा युगल है—कथंचित् अनेक है कथंचित्

एक है। चौथा युगल है कथंचित् वह है और कथंचित् वह नहीं है। ऐसे चार युगलोंसे गुम्फित प्रत्येक वस्तु होती है अर्थात् वस्तुका प्रतिपादन जब किया जायगा और उसका विशेष विचार करके ही निर्णय दिया जायगा तो इन चारों युगलोंके माध्यमसे बताया जायगा। चाहे कोई पदार्थ अमूर्त हो, सूक्ष्म हो, वह भी चार युगलों से गुम्फित है। यह तो वस्तुके स्वरूपमें ही महिमा पड़ी हुई है। कोई भी पदार्थ लीजिये! जैसें एक आत्मपदार्थको उदाहरणमें लें तो आत्मा कथंचित् है और कथंचित् नहीं है, कथंचित् नित्य है, कथंचित् अनित्य है, कथंचित् एक है कथंचित् अनेक है, कथंचित् वही है कथंचित् वही नहीं है। इन चार युगलोंसे गुम्फित आत्मतत्त्व विदित होगा। पुद्गल धर्म आदिक किसी भी द्रव्यका वर्णन करेंगे तो वह प्रतिपादन चारों युगलोंके माध्यमसे होना पड़ेगा।

विवक्षावश सप्रतिपक्ष अनेक धर्मोंसे युक्त वस्तुको बतानेमें अनेकान्त बोधकी शुद्धि—यहाँ एक बात ध्यानमें रखना है कि अनेकान्तका अर्थ है एक नहीं किंतु एकसे अधिक अन्त याने धर्मोंसे युक्त होना, तो ऐसे वे सप्रतिपक्ष अनेक धर्म लिए गए जिनसे अनेकान्त बोधकी शुद्धि होती है। यों तो इस तरहका प्रतिपादन किया जा सकता था कि आत्मामें ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है आदिक अनेक धर्म हैं और यों अनेक धर्मोंसे युक्त होनेके कारण आत्मा अनेकान्तात्मक है। किन्तु विचार करनेपर समझमें आयगा कि इस तरह एक पदार्थमें अनेक धर्म बतानेकी बात साधारण है और प्रत्येक दर्शनकारने एक वस्तुमें अनेक धर्मोंको बताया है। जैसे प्रकृतिमें सत्त्व, रज, तमोगुण विशेष है अन्य भी अनेक वर्णन हैं। यों अनेक धर्म बतानेसे अनेकान्तपने का मर्म विदित नहीं होता। यद्यपि इस प्रकार भी अनेकान्तात्मक वस्तु है, पदार्थमें अनेक धर्म इस प्रकार रहते हैं। जैसे आत्मामें ज्ञान, दर्शन, आनन्द, श्रद्धा, चारित्र आदिक गुण माने गए हैं। पुद्गलमें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक गुण माने गए हैं। यों भी अनेक धर्मात्मक हैं, किंतु इन पद्धतियोंसे अनेकान्तवाद सिद्ध नहीं होता। अनेकान्तवादकी सिद्धि है प्रतिपक्ष धर्मोंको बतानेसे। वस्तु 'है' तो वही 'नहीं' भी है। इसमें विवक्षायें लगाकर फिर सिद्ध किया जाय तो यह अनेकान्तवादकी प्रक्रिया है। वस्तुमें नित्यपना माना तो उसका प्रतिपक्ष अनित्यपना है। यों सप्रतिपक्ष धर्मोंसे युक्त माननेपर अनेकान्तकी सिद्धि करना अनेकान्तवादका मर्म है। उसी पद्धतिसे यहाँ वस्तुको इन युगलोंसे गुम्फित बताया। प्रत्येक युगल परस्पर सप्रतिपक्ष है। यों सप्रतिपक्ष धर्मसे युक्त वस्तुको सिद्ध करना अनेकान्तवादकी पद्धति है। वस्तु इन चार युगलोंसे गुम्फित है, सो उसकी और विशेषता बताते हैं।

अथ तद्यथा यदस्ति हि तदेव नास्तीति तच्चतुष्कं च।
द्रव्येण क्षेत्रेण च कालेन तथाथवापि भावेन ॥ २६३ ॥

स्यादस्ति स्यान्नास्तिरूप प्रथम युगलको द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सिद्ध करनेका निर्देश वस्तु चार युगलोंसे गुम्फित है यह बात उपरकी गाथामें बताया ही है। यहाँ यह बतला रहे हैं कि उन चार युगलोंका होना द्रव्य, क्षेत्र काल भावकी अपेक्षासे सिद्ध किया जाता है। अब द्रव्यसे अस्ति द्रव्यसे नास्ति, क्षेत्रसे अस्ति क्षेत्रसे नास्ति कालसे अस्ति कालसे नास्ति भावसे अस्ति भावसे नास्ति यों ८ तरीकों से अस्ति नास्तिके युगलको बताया जायगा यों ही इन ८पद्धतियोंमें नित्य अनित्य युगल को सिद्ध किया जायगा। इन्हीं ८ प्रकारोंमें एक अनेक और सत् असत् को बताया जायगा। इन द्रव्यादि चतुष्टयको युगलोंकी सिद्धिसे वस्तुमें जो निज स्वरूप है उसपर प्रकाश अच्छा आता है और वस्तुका वस्तुत्व सही समझमें आ जाता है। तो उन ३२ प्रसंगोंमें प्रथम द्रव्य अपेक्षा पदार्थ है और नहीं है इस बात की सिद्धि करते हैं।

एका हि महासत्ता वा स्यादवान्तराख्या च।
न पृथक्प्रदेशवत्त्वं स्वरूपभेदोऽपि नानयोरेव ॥ २६४ ॥

द्रव्यसे स्यादस्ति स्यान्नास्ति सिद्ध करनेके लिये महासत्ता व आवन्तरसत्ताका कथन—सत्ता दो प्रकारकी बताई गई है—महासत्ता और आवान्तर सत्ता, क्या अर्थ है इन दोनोंका विवरण आगेकी गाथाओंमें किया ही जायगा पर संक्षेपतया यहाँ यह समझना कि पदार्थमें सत्त्व सामान्य है अर्थात् सत्त्वके साथ अन्य कोई विशेषता न निरखकर देखा जाता है कि वह पदार्थ महासत्ताकी पद्धतिसे विदित कराया गया समझिये ! और, जब वही पदार्थ पदार्थमें पाये जाने वाले असाधारण गुणोंके अस्तित्व द्वारा बताया जायगा तो वह आवान्तर सत्ता द्वारा बताया जायगा अथवा एक ही वस्तुमें भेद न डालकर केवल सत्रूपसे समझ लेनेपर यह सत्ता विदित होगी और एक ही उसी वस्तुमें भेद करके द्रव्य, गुण, पर्याय आदिक अनेक ढंगोंमें ज्ञान करेंगे तो जो एक-एक ढङ्ग है वह एक एक आवान्तर सत्तारूप होगा। यों दो प्रकार की सत्ताको जानकर उनकी अपेक्षा द्रव्यसे अस्तित्व नास्तित्वकी सिद्धि होगी। तो सत्ता यहाँ दो प्रकारसे कही गई है—महासत्ता और आवान्तर सत्ता। लेकिन ये दोनों सत्तायें कोई भिन्न-भिन्न प्रदेश वाली नहीं हैं अथवा ये कोई अपना स्वतंत्र स्वतंत्र रूप नहीं रखतीं, इस कारण इनमें स्वरूपभेद भी नहीं है। वस्तु वही है, केवल एक निरखने निरखनेकी दृष्टि है। सामान्य दृष्टिसे निरखनेमें महासत्ता और विशेष दृष्टिसे निरखनेमें आवान्तर सत्ताकी प्रतीति होती है। तो द्रव्यकी अपेक्षासे सत् असत् सिद्ध करनेमें माध्यम लिया जायगा महासत्ताका, आवान्तर सत्ताका अतः उसीका कथन इस गाथामें किया है और साथ ही यह भी बता दिया गया है कि इनकी कोई पृथक सत्ता नहीं है कि ये दोनों एक साथ एक समान रूपसे रह सकते हों। केवल दृष्टिभेदसे निरखा गया यह भेद है। अब उन दोनों प्रकारकी सत्ताओंमेंसे महासत्ताका स्वरूप

कहते हैं।

किंतु सदित्यभिधानं यत्स्यात्सर्वार्थसार्थसंस्पर्शि ।
सामान्यग्राहकत्वात् प्रोक्ता सन्मात्रतो महासत्ता ॥ २६५ ॥

महासत्ताका स्वरूप—सत्ता इतना ही मात्र जो कथन है वह समस्त अर्थ समूहका स्पर्श करने वाला है, क्योंकि वह सामान्यका ग्राहक है, इसलिए सन्मात्र इतने कथनसे महासत्ताका बोध होता है। यह महासत्ता इस प्रकार भी देखी जा सकती है कि समस्त द्रव्य समूह अनन्तानन्त जीव द्रव्य अनन्तानंत पुदगल द्रव्य एक धर्मद्रव्य एक अधर्मद्रव्य एक आकाश और एक असंख्यात काल द्रव्य इन समस्त द्रव्योंमें जो हैपने की बात है, केवल हैपनेकी दृष्टिसे हैमें क्या अन्तर आता है ? तो केवल है को देखने से यह भान होगा, ऐसा है सब ही है। यह महासत्त्व केवल सत्तामात्रपना सर्व पदार्थोंमें पाया जाता है, किन्तु यह न समझना चाहिये कि वास्तवमें कोई महासत्ता नामका पदार्थ है। चाहे गुणरूपसे हो या अन्य रूपसे हो और वह सब पदार्थोंमें व्याप कर रहता है, ऐसा नहीं है, किन्तु पदार्थ ही जब केवल सन्मात्र रूपसे निहारा जाता है तो वहाँ महासत्त्व विदित होता है। तब इस दृष्टिसे भी न निहारें कि समस्त पदार्थों में जो एक सत्त्व सामान्य विदित होता है वह महासत्ता है उसे यों भी निहार सकें कि एक ही पदार्थमें कोई भेद न करके कि द्रव्य है, गुण है, पर्याय है आदिक कुछ भी भेद न करके एक उस वस्तुको सामान्यरूपसे निहारें तो वहाँ वह सन्मात्र वस्तु विदित होगी, यों सन्मात्र तत्त्वका जो बोध होता है वह है महासत्ता। यह महासत्ता भेद नहीं डालती अतएव इसे व्यापक कह सकते हैं और इसी कारण उसे एक कह सकते हैं पर इस विवक्षाको छोड़कर एकान्ततः एक सर्वव्यापक सत्त्व पदार्थ मानना वस्तु स्वरूपसे विरुद्ध है। तो महासत्ताका यह स्वरूप कहा अब आवान्तर सत्ताका स्वरूप कहेंगे।

अपि चावान्तर सत्ता सद् द्रव्यं सन् गुणश्च पर्यायः ।
सच्चोत्पादध्वंसौ सदिति ध्रौव्यं किलेति विस्तारः ॥ २६६ ॥

आवान्तर सत्ताका स्वरूप—आवान्तर सत्ता अनेक प्रकारसे विदित की जाती है। द्रव्य सत् है, गुण सत्, उत्पाद सत्, व्यय सत् ध्रौव्य सत् आदिक भी सद्-भूत वस्तुके सम्बन्धमें जिन जिन अंशोंरूपमें उस वस्तुको देखा जा रहा है उस समय वह वस्तु उस आवान्तर सत्तारूपसे है वस्तु तो जो कुछ है सो ही है, उस वस्तुको द्रव्य रूपमें देखा कभी गुणरूपमें देखा। वस्तुकी शक्तिपर दृष्टि रखकर शक्तिरूपमें देखा तो कभी परिणतिरूपमें देखा। जब परिणतिरूपमें देखा तब वस्तुमें परिणति मात्र विदित

हुआ। जब गुणरूपमें देखा तो वस्तुमें शक्तिमात्र प्रतीत होता है और द्रव्यके ढंगसे देखनेपर वह वस्तु द्रव्यरूप प्रतीत होती है। वही वस्तु चूंकि उत्पादव्यय ध्रौव्य स्वरूप है, उसमें जब हम उत्पादके रूपमें देखते हैं तो वस्तु उत्पाद मात्र है, जब विवक्षित पर्यायके व्ययरूपमें देखते हैं तो वस्तु व्यय मात्र है और जब उत्पाद व्यय समस्त धर्मों में अनुगंत एक ध्रौव्यकी दृष्टिसे देखते हैं तो वस्तु ध्रौव्यमात्र है। तो जब जिसरूपसे देखनेपर वस्तु तन्मात्र प्रतीत होती है तो आवान्तर सत्ता उतनेरूप हो गई जितने रूप पदार्थको देखा है। यहाँ महासत्ता और आवान्तर सत्तासे यह अभिप्राय नहीं रखा गया कि जो समग्र पदार्थोंमें सत्त्व सत्त्वरूपसे रह रहा है वह महासत्ता हुआ और एक एक पदार्थकी जो सत्ता है वह आवान्तर सत्ता हुई, इस रूपमें न देखकर यों परखा जा रहा है कि वही वस्तु जब भेद विवक्षामें न रहकर सामान्य मात्र ही दिखती है तो वह वस्तु महासत्तारूप है। जब वही वस्तु किसी विशेष गुण, विशेष पर्याय, विशेष धर्मके रूपमें निरखा गया तो उस कालमें वस्तुमें विशेषधर्म मात्र है। तब कितने ही रूपसे देखा जा रहा है। वह सब आवान्तर सत्ता हुई।

अयमर्थो वस्तु यदा सदिति महासत्तयाऽवधार्येत ।
स्यात्तदवान्तरसत्तारूपेणाभाव एव न तु मूलात् ॥ २६७ ॥

महासत्ता द्वारा वस्तुके सद्भावकी अवधारणामें आवान्तर सत्तारूपसे अभावकी सिद्धि—महासत्ता और आवान्तर सत्ताका स्वरूप जानकर वहाँ यह निष्कर्ष निकलता है कि वस्तु जब महासत्ताकी दृष्टिसे यह सत्तारूप है यों निर्धारित किया जा रहा हो तो उस समय वस्तु आवान्तर सत्ताके रूपसे नहीं है, अभाव है ऐसा समझना चाहिए। ऐसा समझनेपर भी यह न जानना कि यह अभाव मूलसे हुआ हो। वस्तु तो वही विध्यात्मक है। उसे जब द्रव्य, गुण, पर्याय, उत्पादव्यय, ध्रौव्यादिक अंशोंकी अपेक्षा न करके जब सामान्यरूपसे निहारा जा रहा हो उस समय वस्तु उस सत्ताके रूप मात्र है और अन्य अन्य विशेष आवान्तर सत्ताओंके रूपसे नहीं है। तो दृष्टिमें चूंकि महा सत्त्व आया है अतएव उस दृष्टिसे है और जो दृष्टिमें आया ही नहीं है अथवा जिसकी विवक्षा हो नहीं है उस रूपसे उसका अभाव है।

अपि चावान्तरसत्तारूपेण यदावधार्यते वस्तु ।
अपरेण महासत्तारूपेणाभाव एव भवति तदा ॥ २६८ ॥

आवान्तरसत्ताद्वारा वस्तुके सद्भावकी अवधारणामें महासत्तारूपसे अभावकी सिद्धि जिस प्रकार वस्तु महासत्ताकी अपेक्षासे सत् है और वही वस्तु आवान्तर सत्‌की अपेक्षासे असत् है तो अब यह दृष्टि पलट कर देखें कि वस्तु आवा-

न्तर सत्ताकी अपेक्षासे है तो वही महासत्ताके रूपसे नहीं है। उसका अभाव है, यह बात विदित होती है। जैसे कि महासत्ताके लक्ष्यसे वस्तुको सामान्य मात्र अभावरूप देखा गया था, उसमें किन्हीं भी भेद अंश धर्मोंकी दृष्टि न थी, तब वह वस्तु सामान्य सत् मात्र ही तो विदित हुआ, अन्यरूपसे तो वह है ही नहीं, इसी प्रकार अब जब कि आवान्तर सत्ताके लक्ष्यसे लखा जा रहा है, जैसे भी आवान्तर विशेषको लक्ष्यमें लेकर देखा जा रहा है, जैसे कि शक्ति गुणके रूपमें लखा जा रहा है तो वस्तु उन गुणोंके रूपसे है और अन्य रूपसे नहीं है। द्रव्यरूपसे, पर्यायरूपसे, अथवा अभेदरूपसे जो बात जानी थी वह नहीं है। इस तरह एक ही पदार्थमें स्याद अस्ति और स्याद नास्ति की प्रतीति हो रही है अनेक साधनोंपर एक साधारण बात समझानेके लिए अस्ति नास्ति का प्रयोग स्व और परकी दृष्टिसे किया जाता है जैसे घट घटरूपसे है, पट रूपसे नहीं है, अपनेसे भिन्न अनन्त अनेक पदार्थोंकी अपेक्षासे नास्ति ऐसा भी स्याद्वादका निरूपण है, वह भी अतथ्य तो नहीं है क्योंकि है भी, ऐसा अगर कुछ न हो तो वहाँ कल्पनायें करके आगे विचार करें, स्वरूप न बनेगा, जगत ही न रहेगा, कुछ तत्त्व व्यवस्था न बन पायेगी। तब वहाँ यह कहना ही होगा कि घट अपने द्रव्यसे है और पट आदिक पर द्रव्यसे नहीं है, यह बात कही गई स्वपरकी दृष्टिसे। किन्तु यहाँ अनेकान्त देखा जा रहा है एक ही पदार्थमें। भिन्न पदार्थोंका मुकाबलेतन रख करके अस्ति नास्तिकी बात यहाँ नहीं कही जा रही है, किन्तु एक ही वस्तुमें स्याद अस्ति स्याद नास्तिका प्रयोग किया जा रहा है। वस्तु भेद दृष्टिसे निरखनेपर जो कुछ प्रतीत होता है वह नहीं है अन्य दृष्टिसे निरखनेपर। तो वस्तु आवान्तर सत्ता रूपसे है यह निश्चित है। तो वही वस्तु महासत्ता रूपसे नहीं है यह भी निश्चित होता है।

दृष्टान्तः स्पष्टोऽयं यथा पटो द्रव्यमस्ति नास्तीति ।
पटशुक्लत्वादीनामन्यतमस्याविवक्षितत्वाच्च ॥ २६६ ॥

द्रव्यसे स्यादस्ति स्यान्नास्तिकी सिद्धिमें एक दृष्टान्त—एक ही वस्तुमें स्याद अस्ति और स्याद नास्तिका जो प्रयोग घटित किया जा रहा है उस सम्बन्धमें एक दृष्टान्त बिलकुल स्पष्ट दृष्टान्त है। जैसे कहा कि पट द्रव्य है, और पट नहीं भी है। तो जब पटमें वस्त्रमें तंतु शुक्लादिककी दृष्टि नहीं रखी जाती, केवल वस्त्र मात्रकी दृष्टि रखी जा रही हो उस कालमें उस दृष्टिसे वह किस प्रकार विदित हो रहा, एक सामान्यरूपसे। अथवा जब उस ही वस्त्रको तंतु शुक्लादिकरूपमें निरखा तो वहाँ वह तंतु सफेदी आदिक दिख रही हैं, वहाँ पट नहीं प्रतीत हो रहा। जैसे पट अपने आपमें स्याद है स्याद नहीं है इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने आपके उस सामान्य महा सत्त्वके रूपसे है तो गुण धर्म आदिक अनेक भेदोंकी दृष्टिसे नहीं है। क्योंकि जब जिस दृष्टिसे निहारा जा रहा है वहाँ अन्य दृष्टि गौणकी अविवक्षा है। इस

प्रकार द्रव्यकी अपेक्षासे स्याद अस्ति और स्याद नास्तिका वर्णन किया। जिस तरह द्रव्य अपेक्षासे वस्तुमें स्याद अस्ति स्यादनास्ति घटित होता है उसी प्रकार वस्तुमें क्षेत्र की अपेक्षासे भी स्याद अस्ति और स्याद नास्ति घटित होता है।

क्षेत्रं द्विधावधानात् सामान्यमथ च विशेषमात्रं स्यात् ।
तत्र प्रदेशमात्रं प्रथमं प्रथमेतरं तदंशमयम् ॥ २७० ॥

क्षेत्रापेक्षया स्यादस्ति स्यान्नास्तिकी सिद्धिके लिये सामान्यक्षेत्र व विशेषक्षेत्रका कथन—क्षेत्र भी दो प्रकारसे कहा जाता है सामान्य और विशेष, क्षेत्र नाम है उसका जहाँ कि वस्तुका निवास होता हो। वस्तु जिसमें रहे उसे उसका क्षेत्र कहते हैं। वस्तु जिसमें रहे उसे उसका क्षेत्र कहते हैं। परमार्थतः वस्तु अपने प्रदेशमें ही है वस्तुका अस्तित्व उस वस्तुमें स्वयंमें है उससे अन्य वस्तुमें नहीं है। यदि कोई पदार्थ अनन्त पदार्थोंकी जगहमें ही रह रहा है तो रहे किन्तु क्षेत्र जब सबका अंतः न्यारा न्यारा है तो बड़ेसे बड़े शान्तिके क्षेत्रमें रहकर भी जब अपने सत्त्वकी दृष्टिसे देखा जाता है तो वह अपने आपमें ही है। तो सामान्य क्षेत्रकी अपेक्षा तो वस्तु अभेद प्रदेश मात्र है और विशेष दृष्टिकी अपेक्षासे वस्तु अनेक प्रदेश क्षेत्र मात्र है। जैसे बताया गया है कि जीवमें असंख्याते प्रदेश होते हैं तो वे असंख्याते प्रदेश जीवमें अविभागी एक एक प्रदेशकी दृष्टिसे ही तो हैं और हैं वे असंख्यात प्रदेशमात्र तो आखिर एक एक प्रदेशका परिमाण तो है। एक प्रदेशका परिमाण बताया गया है कि अविभागी परमाणु एक जितने क्षेत्रमें रखा उतने क्षेत्रका नाम एक प्रदेश है। वह तो हुई बाह्य क्षेत्रकी बात। और, वहाँ जो परमाणु अपने एक क्षेत्रमें रहा वह है परमाणुके स्वक्षेत्रकी बात। जब वह वस्तु स्वक्षेत्रसे हटकर विशेष क्षेत्रमें देखी जाती है तो वह वस्तु तन्मात्र है। तो क्षेत्र यहाँ दो प्रकार कहा गया है सामान्य क्षेत्र और विशेष क्षेत्र। प्रदेशमात्र अभेद दृष्टिसे प्रदेशमात्रका कथन तो है सामान्य क्षेत्रका कथन और वस्तु एक दो आदिक अनेक अंशमय है, ऐसा भिन्न भिन्न अंशोंमें असंख्यात रूप से भी निरखना यह सब है विशेष क्षेत्र।

अथ केवल प्रदेशात् प्रदेशमात्रं यदेष्यते वस्तु ।
अस्ति स्वक्षेत्रतया तदंशमात्राविवक्षितत्वान्न । २७१ ।

सामान्यक्षेत्रसे वस्तुका सद्भाव परिज्ञान किये जानेकी दृष्टिमें विशेष-क्षेत्ररूपसे अभावकी सिद्धि—सो उन सामान्य और विशेष क्षेत्रोंमेंसे जब कोई वस्तु केवल प्रदेशसे देखी जा रही है तो वह प्रदेशमात्र ही विदित होगा स्वक्षेत्रकी अपेक्षासे वस्तु अपने प्रदेशमात्र है और जब प्रदेशभेदकी दृष्टिसे देखने चलते हैं तो

उस समय वस्तु असंख्यात प्रदेश नजर आ रहे तो वहाँ इस तरह ही जीव देखा जा रहा है कि लो यह जीव इतना बड़ा है। इसमें असंख्याते प्रदेश हैं जब उस दृष्टिमें असंख्याते प्रदेशके रूपसे महादेखते इस दृष्टिसे तो जीव हैं और सामान्यरूपसे जहाँ कि प्रदेशभेद विवक्षित न होते हों उस दृष्टिसे वे जीव नहीं हैं। तो सामान्य क्षेत्र और विशेष क्षेत्रसे दो कल्पनासे दृष्टिसे जुदे-जुदे विषय बनते हैं। पदार्थ तो एक ही है तो उस कल्पनामें ही जब भेदसे देखा तो अभेद क्षेत्रमात्र वस्तु सत् हैं और भेद प्रदेशके रूपसे असत् है क्योंकि प्रदेश भेदकी वहाँ विवक्षा ही नहीं की गई है।

अथ केवलं तदंशात्तावन्मात्राद्यदेष्यते वस्तु ।
अस्त्यंशविवक्षितया नास्ति च देशाविवक्षितत्वाच्च ॥२७२॥

विशेषक्षेत्ररूपसे वस्तुके सद्भावकी सिद्धिमें सामान्यक्षेत्रसे अभावकी सिद्धि - क्षेत्रके सामान्य और विशेष दो भेद किए गए थे सामान्य क्षेत्रसे तो देश मात्र ग्रहण किया गया है. उसमें प्रदेश विस्तार प्रदेश संख्याकी कोई दृष्टि नहीं है अखण्ड एक भावात्मक दृष्टि की गई है। विशेष क्षेत्रमें वे द्रव्य कितने प्रदेशमें है इस तरह उनके प्रदेशकी संख्या विस्तार आदिक की दृष्टि है। तो जैसे ऊपरकी गाथामें कहा गया था कि केवल प्रदेश दृष्टि से, केवल देश दृष्टिसे सामान्य क्षेत्रकी अपेक्षासे देखने पर अविभाज्य अखण्ड वह समस्त स्वक्षेत्रात्मक वस्तु है और असंख्यात प्रदेशात्मक रूपसे नहीं है तो इस गाथामें यह बता रहे हैं कि जब उनमेंसे केवल देशांशकी अपेक्षा लेते हैं तो जितने वस्तुके अंश हैं केवल उन अंशोंरूपसे वस्तु कहा जाता है तो उस समय वह अशोंकी अपेक्षासे तो है, किन्तु देशकी अपेक्षासे नहीं है। यहाँ देशकी विवक्षा नहीं है अर्थात् एक अखण्ड क्षेत्रकी विवक्षा नहीं है। किन्तु जितने प्रदेश हैं वस्तुमें उतने प्रदेशको निरख करके खोजा जा रहा है तो ऐसी दृष्टिमें वस्तु असंख्यात प्रदेशात्मकरूपसे है और एक देशात्मक रूपसे नहीं है, यों क्षेत्रकी अपेक्षासे एक ही वस्तुमें एक के ही क्षेत्रसे अस्ति नास्ति का कथन हुआ। अब इसी विषयको दृष्टान्त पूर्वक कहते हैं।

संदृष्टिः पटदेशः क्षेत्रस्थानीय एव नास्त्यस्ति ।
शुक्लादितन्तुमात्रादन्यतरस्याविवक्षितत्वाद्वा ॥ २७३ ॥

क्षेत्रापेक्षया स्यादस्ति स्यान्नास्तिकी सिद्धिका दृष्टान्त द्वारा स्पष्टीकरण - क्षेत्रकी अपेक्षासे ही वही वस्तु है और नहीं है, इस प्रकरणको दृष्टान्त द्वारा बताते हैं कि जैसे पट याने कोई वस्त्र उसका विस्तार वह एक देश है अर्थात् पूर्ण वह अपने क्षेत्ररूपसे है। जब किसीको केवल वस्त्र का ही प्रयोजन है मोटा पतला आदिक

वस्त्रसे नहीं अथवा रेशम या कपास आदिकके वस्त्रसे नहीं। वस्त्र मात्रपर जिसकी दृष्टि है उसकी दृष्टिमें वह एक वस्त्र दीखेगा, वहाँ अन्य भेदकी कल्पना नहीं होती। तो ऐसी दृष्टिमें जो पट दीखा तो वह पूर्ण पट देशरूपसे वह है और उसमें जो तंतु हैं, सफेदी आदिक जो रंग है मोटा पतला आदिक रूपसे वह नहीं है, क्योंकि दृष्टिमें केवल एक पट मात्रको लिया गया है और वहाँ शुक्लादिक तंतुवोंकी कोई विवक्षा नहीं है। तो जैसे वहाँ पट देशकी विवक्षा होनेपर पटकी अपेक्षासे है, शुक्लादिक तंतुओंकी अपेक्षासे नहीं है इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने आपके अविभाज्य एक क्षेत्रकी अपेक्षासे वह है तो असंख्यात प्रदेशकी अथवा विस्तारकी दृष्टिसे वह नहीं है। इस ही पटको जब तंतुओंकी दृष्टिसे देखा, किसी पुरुषको कोई पसंद है पतला अथवा मोटा अथवा रंग डिजाइन, तो उसकी दृष्टिमें उस समय वे तंतु, रंग, डिजाइन आदिक हैं। उस समय उन तंतु आदिककी अपेक्षासे वह वस्त्र है और एक क्षेत्ररूप, एक देशमात्र पटकी अपेक्षासे नहीं है। इसी प्रकार जब किसीकी दृष्टि असंख्यात प्रदेश पर होती है तो वहाँ असंख्यात प्रदेशकी अपेक्षासे वह है और एक अखण्ड क्षेत्ररूपसे नहीं है। यों क्षेत्रकी अपेक्षासे वस्तुमें अस्ति और नास्तिका वर्णन है। अब कालकी अपेक्षासे एक ही पदार्थमें अस्तित्त्व और नास्तित्त्वका प्रतिपादन करते हैं।

कालो वर्तनमिति वा परिणमनं वस्तुनः स्वभावेन ।
सोऽपि पूर्ववद् द्वयमिह सामान्यविशेषरूपत्वात् ॥ २७४ ॥

कालापेक्षया स्यादस्ति स्यान्नास्तिकी सिद्धिके लिये सामान्यकाल व विशेषकालका कथन वर्तनाको काल कहते हैं अथवा कहो कि वस्तुका अपने ही स्वभावसे प्रतिसमय जो परिणमन होता है उसका नाम काल है। सो वह काल भी द्रव्य, क्षेत्र भावकी भाँति दो प्रकारका है—सामान्य काल और विशेषकाल। यहाँ काल शब्दसे ग्रहण करते हैं वस्तुके उस हीका स्वयंका परिणमन। और वह परिणमन सामान्यरूपसे निरखा जायगा और कभी विशेषरूपसे निरखा जायगा। तो सामान्यरूपसे निरखा हुआ अर्थात् परिणमन मात्र, वह है सामान्य काल और जहाँ व्यतिरेक योजित होता है यह वह नहीं है, इस प्रकारका जो विशेष परिणमन है, विशिष्ट, खास परिणमन है वह कहलाता है विशेष परिणमन। तो उन्हीं सामान्य परिणमन और विशेष परिणमनके माध्यमसे कालकी अपेक्षासे वस्तुमें अस्तित्त्व और नास्तित्त्वका वर्णन किया जायगा।

सामान्यं विधिरूपं प्रतिषेधात्मा भवति विशेषश्च ।
उभयोरन्यतरस्यावमग्नोन्मग्नत्वादस्ति नास्तीति ॥ २७५ ॥

सामान्य और विशेष कालका मर्म—सामान्यकालका नाम है विधि रूप काल और विशेष कालका नाम है प्रतिषेधात्मक काल। इस सामान्य और विशेषके पर्यायवाची शब्द जो दिए हैं उनमें मर्म है। सामान्य परिणमनकी दृष्टिसे जब निरखते हैं तो सभी परिणमनोंमें यही है, परिणमन ही है, केवल विधिकी बात निरखते हैं और जो विशेष परिणमन है, समय समयमें जो जुदा जुदा परिणमन है उसपर दृष्टि देकर जब कुछ खोज की जाती है तो वहाँ प्रतिषेधका प्रयोग होता है। यह वह नहीं है, परस्पर एक पर्यायसे दूसरी पर्यायमें व्यतिरेक दिखता है, इस कारण विशेषकालका नाम प्रतिषेधात्मक काल कहा है और सामान्यकालका नाम विधिरूप काल कहा है। दोनों कालोंमेंसे किसी एककी विवक्षा होनेपर दूसरेकी अविवक्षा हो ही जाती है और ऐसी स्थितिमें कि जब कोई एक विवक्षित है और दूसरा अविवक्षित है तो वहाँ अस्तित्व और नास्तित्व धर्मकी सिद्धि बनती है। जो काल विवक्षित है उसकी दृष्टि में वही काल अस्तिरूप है और जो अविवक्षित काल है उसका नास्तित्व है। यों समझिये कि जैसे जब कभी सामान्यपर दृष्टि दे रहे हैं तो उसके आशयमें विशेष परिणमन डूब गया है। डूब गया है इसका भाव है गौण हो गया। डूबा हुआ पुरुष कहीं मूलसे नहीं मिट जाता, किन्तु वह दबा हुआ है अप्रकट है, इसी प्रकार जो निमग्न हो गया, हट नहीं गया, नष्ट नहीं हो गया, किन्तु इस दृष्टिमें वह निमग्न है, दबा हुआ है। तो जब सामान्य कालकी दृष्टि होती है तब वहाँ विशेषकाल निमग्न है, डूब गया है, और सामान्यकाल अनिमग्न है उसकी दृष्टि चल रही है और वहाँ सामान्य परिणमन दृष्ट हो रहा है। जब विशेषकालकी दृष्टि होती है तो सामान्य परिणमन निमग्न हो गया है अब वहाँ विशेष कालकी दृष्टि चल रही है, यहाँ कालका अर्थ है स्वका परिणमन।

कालापेक्षया स्यादस्ति स्यान्नास्तिकी स्वकालमें घटितता—काल द्रव्य की बात नहीं कह रहे, यहाँ अनेकान्त एक ही द्रव्यमें उस एक ही द्रव्यके धर्मोंके माध्यमसे बताया जा रहा है। यहाँ निमित्तभूत कालकी दृष्टि नहीं रखना है। तो जो वस्तुका परिणमन है उस ही परिणमनको दृष्टिमें लेकर अस्तित्व और नास्तित्वका यह वर्णन किया जा रहा है। अस्तित्व और नास्तित्वके वर्णनमें अपेक्षा दो होनी चाहिएं सो यहाँ सामान्यकाल और विशेषकाल ये दो अपेक्षायें रखी गई हैं। तो इन अपेक्षाओंमें जब सामान्य परिणमनकी दृष्टिसे तका जा रहा तो बस परिणमन मात्र है। जिस दृष्टिमें कहते हैं कि वस्तुका उत्पाद व्यय स्वभाव है, विशिष्ट अवस्थाका उत्पाद व्यय वहाँ इष्ट नहीं है। अभिप्रायमें नहीं लिया गया किन्तु परिणमनकी जो प्रकृति है उत्पन्न होते रहना, व्यय होते रहना, इतना सामान्य मात्र लिया गया है। तो उत्पाद व्यय जैसी क्षणिक दशायें भी सामान्य बन जाया करती हैं। तो वस्तुके सभी परिणमन परिणमन सामान्यकी दृष्टिसे सामान्य बन जाय इसमें क्या आश्चर्य

है । तभी सामान्य परिणमनकी दृष्टिमें विधिरूपसे ही उत्तर आयगा । सब कुछ है ही हैं, न का वहाँ काम नहीं, इसी कारण सामान्य कालको विधिरूप कहा गया है और जहाँ विशेष कालकी बात आयगी वहाँ एक परिणमनसे दूसरा परिणमन विभिन्न है। तो अपने आप ही एकका दूसरेमें अभाव है, प्रतिषेध है । तो जहाँ प्रतिषेध ही कलेवर बन गया ऐसी दृष्टिको प्रतिषेधात्मक दृष्टि कहते हैं । तो विधिरूप कालसे वस्तु है तो प्रतिषेधात्मक कालसे वस्तु नहीं है, जब प्रतिषेधात्मक कालमें वस्तु है तो विधिरूप दृष्टिमें वस्तु नहीं है ।

तत्र निरंशो विधिरिति स यथा स्वयं सदेवेति ।
तदिह विभज्य विभागैः प्रतिषेधश्चांश कल्पनं तस्य ॥ २७६ ॥

विधिकाल व प्रतिषेधकालका दिग्दर्शन - ऊपरकी गाथामें विधि और प्रतिषेधका वर्णन आया है और बताया गया है कि विधि तो सामान्य रूप है और प्रतिषेध विशेषरूप है । इस ही बातको खुलासा करते हुए प्रकृत कालकी अपेक्षा भेद दृष्टिमें स्याद् अस्ति स्याद् नास्तिका संकेत कर रहे हैं । विधि निरंश होती है सामान्य अंशरहित जिसकी निरख करनेपर केवल हाँ हाँ ही उत्तर आये उस भावको विधि कहते हैं. जैसे सभी पदार्थ स्वभावसे सत्स्वरूप हैं ऐसा समझना सो विधि है । सभी सत् हैं । सत् सामान्यकी दृष्टिसे देखा और वहाँ सत् सत् यह ही बोध हुआ । प्रतिषेधरूप अथवा कोई विशेषताका बोध नहीं । जितनी भी विशेषतायें होती हैं वे दूसरेका प्रतिषेध करती हुई होती हैं । तो विशेषमें तो प्रतिषेधका अवसर है पर सामान्यमें प्रतिषेधका अवसर नहीं है । जैसे कहा नीला कमल तो प्रतिषेध उसके साथ लगा हुआ है नीला, न कि पीला आदिक । तो जो विशेष परिणमन होते हैं उनके साथ प्रतिषेध लगा ही रहता है इस कारण विशेष प्रतिषेध स्वरूप कहलाता है और सामान्य विधि स्वरूप कहलाता । सामान्यमें कहीं प्रतिषेधका अवसर नहीं, वह तो सर्वव्यापक दृष्टिसे सबको निहारता है । कुछ, छोड़ा कुछ ग्रहण किया यह बात सामान्यमें नहीं है । इस कारण सामान्य विधिरूप ही होती है । तो जैसे पदार्थ स्वभावत: स्वयं सत् स्वरूप ही है यह तो कहलायी विधि और उस पदार्थका विभाव द्वारा विभाग करना कि द्रव्य गुण और पर्याय ऐसा नाना भेद द्वारा सत्ताका विभाग कर दिया उसमें अंश कल्पना हुई ना तो उसका रूप है प्रतिषेध । जैसे पदार्थमें भेद किया कि गुण, तो प्रतिषेध हुआ, गुण ही न कि अन्य कुछ । जो और भी भेद किए जा रहे हैं, उसमें शेष भेदोंका प्रतिषेध साथ में है तो यों प्रतिषेध भेदरूप होता है और उसमें अंश कल्पनायें होती हैं । ये सभीकी सभी बातें एक साथ हैं । जहाँ विशेषता है वहाँ विभाग जरूर पड़े होते हैं, जहाँ विभाग पड़े होते हैं वहाँ विशेषता आती ही है और जहाँ विभाग है, विशेषता है वहाँ अंश कल्पनायें होती हैं और वहाँ प्रतिषेध सबके साथ लगा होता है । तो यों सामान्य

कालको तो विधिरूप कहते हैं और विशेष कालको प्रतिषेधात्मक कहते हैं। सो जब सामान्य कालकी अपेक्षासे वस्तु है यों अस्तित्वका कथन होता है तब वहाँ विशेषकाल की अपेक्षासे नहीं है यों अभाव भी बनता है। इस ही प्रकार जब विशेष कालकी अपेक्षासे है यों अस्तित्व कहा जाता है तो सामान्य कालकी अपेक्षासे नहीं है। वहाँ यह नास्तित्व बताया जाता है।

तदुदाहरणं सम्प्रति परिणमनं सत यावधार्यंत ।
अस्ति विवक्षितत्वादिह नास्त्यंशस्याविवक्षया तदिह ॥ २७७ ॥

विधिकाल व प्रतिषेधकालका घटन—सामान्य और विशेषकालके साथ अस्ति नास्तिका जो वर्णन किया गया है उसका उदाहरण इस प्रकार ले सकते हैं कि जिस समय केवल सत्ताके द्वारा ही परिणमनका निश्चय किया गया हो उस समय उसकी विवक्षा होनेसे वह विधिरूपसे है किन्तु उसके अंशोंकी विवक्षा न होनेसे अंशों की अपक्षासे नहीं है यों सामान्य और विशेषकी अपेक्षासे अस्ति नास्तिपना सिद्ध होता है। इसी प्रकार जब विशेषकालको प्रधान करके निरखते हैं तो विशेष परिणमनकी अपेक्षासे जो अस्तित्व ध्यानमें आया वह सामान्य कालकी अपेक्षासे नहीं है, वहाँ और प्रकार ही है। यों सामान्यकाल और विशेषकालकी अपेक्षासे अस्तित्व नास्तित्वको घटित करनेका प्रसंग बताया है। अब इस ही को लौकिक पदार्थमें दृष्टान्त देते हुए कह रहे हैं।

संदृष्टिः पटपरिणतिमात्रं कालायतस्वकालतया ।
अस्ति च तावन्मात्रान्नास्ति पटस्तन्तुशुक्लरूपतया ॥ २७८ ॥

सामान्यकाल व विशेषकालकी अपेक्षासे स्यादस्ति स्यान्नास्तिका दृष्टान्तपूर्वक निर्णयन- जिस पटरूप जो सामान्य परिणमन है वह काल सामान्य की अपेक्षासे पटका स्वकाल कहा जाता है और पट परिणमन सामान्यके अतिरिक्त अन्य जो कुछ विशेष परिणतियाँ हैं जैसे तंतु, शुक्ल परिणमन आदिक जो भी विशेष परिणमन हैं, वे विशेष परिणमन जब निरखे जाते हैं तब तंतु शुक्ल आदिकरूपसे पदार्थका अस्तित्व है, पर पट परिणति सामान्यकी अपेक्षासे वह नहीं है। जिस समय जिस दृष्टिमें जो कुछ निरखा गया उस समय उस दृष्टिमें मात्र वही है, अन्यका प्रतिषेध है। यों स्वकालका अस्तित्व है तो परकालसे नहीं है अथवा सामान्य कालसे अस्तित्व है तो विशेष कालसे नहीं है और जो अस्तित्व विशेष कालकी दृष्टिमें विदित होता है वह सामान्य कालकी अपेक्षासे नहीं है। यों कालकी अपेक्षासे द्रव्यमें स्याद् अस्ति नास्तिका कथन किया गया है। इस प्रकरणमें सर्वप्रथम यह बताया था कि

वस्तु चार युगलोंसे गुम्फित है। स्याद अस्ति स्याद नास्ति स्याद नित्य स्याद अनित्य स्याद एक स्याद अनेक स्याद तत् स्याद अतत् और ये प्रत्येक युगल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे घटित होते हैं, सो उस प्रसंगके अनुसार यहाँ तक द्रव्यकी अपेक्षासे स्याद अस्ति नास्ति, क्षेत्र अपेक्षासे स्याद अस्ति नास्ति और कालकी अपेक्षासे स्याद अस्ति नास्तिका वर्णन किया। अब भावकी अपेक्षासे स्याद अस्ति नास्तिका वर्णन प्रारम्भ करते हैं।

भावः परिणामः किल स चैव तत्त्वस्वरूपनिष्पत्तिः ।
अथवा शक्तिसमूहो यदि वा सर्वस्वसारः स्यात् ॥ २७६ ॥

भावका स्वरूप—भाव कहते हैं परिणामको अथवा कहो तत्त्वका जो स्वरूप है वह भाव है अथवा कहो शक्तियोंका जो समुदाय है सो भाव है। अथवा भाव शब्दसे पदार्थके सर्वस्व सारका ग्रहण करना चाहिये। इसमें भावकी व्याख्या चार प्रकारसे कही गई है। पहिले बताया है कि भावका अर्थ परिणाम है। भाव शब्द भू धातुसे बना है। जिसका अर्थ है होते रहना। तो होते रहनेकी बात जब कही जाती है तो उसमें परिणाम ही तो विदित होता है। इस भाव शब्दसे परिणाम अर्थ विदित होता है। क्योंकि होते रहनेकी बात परिणामसे सम्बन्धित होती है। यहाँ भावका स्वरूप साधारणरूपसे कहा गया है केवल इतने ही स्वरूपको इन ही शब्दोंमें बताकर कुछ सीमासे बाहरी बात भी कही जा सकती है। होते रहनेका परिणाम है भाव। तो जो कुछ भी होता रहे विरुद्ध परिणमन हो, विपरीत परिणमन हो तो वह भी यहाँ आ जायगा ऐसी बात न आ सके इस कारण लक्षण कहा गया है कि जो तत्त्व स्वरूपकी निष्पत्ति है तत्त्व स्वरूप है वही उसका भाव है। इस कथनमें यह बताया गया है कि स्वरूपकी निष्पत्ति भावमें आयगी न कि जो चाहे परिणमन हों वे सब परिणमन भावमें आयेंगे। इतना कह देनेपर भी अब भी यह संशय बना रह सकता है तो क्या ऐसा जो स्वरूप निष्पन्न होता है वह तो क्षणिक ही होगा, तो क्या भाव क्षणिक हुआ करता है? यों तो क्षणिकवादियोंने ऐसे ही भावकी व्याख्या की है। भाव, पदार्थ, वस्तु पूर्ण जो एक समयमें हो उसकी धारा बौद्धोंने भी स्वीकार किया है। पूर्वक्षण उत्तर क्षणमें अपने आधारका समर्पण करके निवृत्त हो जाते हैं, यह कहा गया है। तो यों भावका लक्षण किया तो गया कि तत्त्व स्वरूपकी निष्पत्तिको भाव कहते हैं पर इसमें क्षणिकताकी बात आ जाती है। तब और विशेष स्पष्ट करनेके लिए तीसरी बार कहा है कि शक्ति समुदायका नाम भाव है। जिस वस्तुकी जितनी शक्तियाँ हैं उनका समुदाय ही भाव है। शक्तियाँ वस्तुके साथ ही साथ नित्य हुआ करती हैं। जैसे परिणमनमें उत्पाद व्ययकी बात आती है यों शक्तियोंका उत्पादव्यय नहीं होता जैसे मूल सत्का उत्पादव्यय नहीं है इसी प्रकार शक्तियोंका भी उत्पादव्यय

नहीं है। तो जब शक्ति समूहका नाम भाव कहा गया तो इससे केवल एक पक्ष आया कि गुण तो नित्य हुआ करते हैं तब वह भाव अपरिणामी हो गया। गुणोंकी व्याप्ति नित्यताके साथ है अनित्यताके साथ नहीं है। तो यहाँ जैसे पहिले क्षणिकता दोषका निवारण करनेके लिए भावका तीसरा अर्थ करना पड़ा तो इस भावके तीसरे लक्षण में सर्वथा नित्यताकी आपत्ति आ सकती है, अतएव निष्कर्षरूपमें बताया गया अन्तमें कि पदार्थका सर्वस्व सार भाव कहलाता है याने वस्तुका जो स्वरूप है वही उसका भाव है। यों भावका स्वरूप चार प्रकारोंमें बताया गया है।

भू व अस धातुके अर्थमें वस्तुस्वरूपका दर्शन—भाव शब्द भू धातुसे बना है। भू धातुका अर्थ सत्ता है और जब पूछा गया कि सत्ता शब्द काहेसे बना ? तो वह बना अस धातुसे। उसका अर्थ है होना। तो अब है व होना इन दोनोंका कैसा परस्पर सहयोग है। भू धातुका अर्थ तो सत्ता है और सत्ताके अस धातुका अर्थ होना है। तो होना इसका अर्थ क्या है ? है इसका अर्थ क्या है ? होता है ! तब इस व्याकरणके संकेतमें हमको यह सार मिला है कि है होनेका अविनाभावी है और होना है का अविनाभावी है। कोई पदार्थ यदि है तो वह होता है यह बात जरूर होगी। कोई पदार्थ होता है तो उसमें है याने अस्तित्व है। होना अर्थात् उत्पाद व्यय है अर्थात् ध्रौव्य। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इन तीनोंका एक पदार्थमें अविनाभाव है और ये एक साथ रहते हैं इस कारण भाव शब्द कहकर केवल अपरिणामी शक्तिको न लेना अथवा परिणामको न लेना, किन्तु वस्तुका जो स्वरूप है वही भाव है, यह अर्थ लेना चाहिये।

सविभक्तो द्विविधः स्यात्सामान्यात्मा विशेषरूपश्च।
तत्र विवक्षो मुख्यः स्यात्स्वभावोऽथ गुणो हि परभावः ।२८०।

भावके प्रकार और उनमें विवक्षानुसार स्वभाव व परभावका विभाग
इस भावके विभाग करनेपर सामान्यभाव और विशेषभाव ऐसे दो प्रकार बनते हैं। सामान्यभाव और विशेषभावमेंसे जो विवक्षित होता है, जिसकी दृष्टिसे कथन करना इष्ट होता है वह तो मुख्य हो जाता है और उस समय उसे स्वभाव कहेंगे और उनमें जो अविवक्षित होता है वह गौण हो जाता है। तब उस दृष्टिसे वह परभाव कहा जायगा। यहां विवक्षितको स्व और अविवक्षितको पर कहा गया है। भावके संबन्ध में जो दो भेद किए गए थे—सामान्यभाव और विशेषभाव। सामान्यभावमें तो एक वस्तुका स्वभावभाव आया जो सदा व्यापक बना रहता है और विशेष भावमें उस भावके अंश किए जाएं, शक्तियाँ मानी जायें, गुण पहिचाने जायें तो वे सब कहलायेंगे विशेषभाव। जब सामान्यभावकी विवक्षा हुई उस समय वह कहलायेगा स्वभाव

और विशेषभाव हो गया प भाव और जब विशेषभावकी दृष्टिका वर्णन करनेकी बात इष्ट हो तो विशेषभाव कहलायेगा स्वभाव। और सामान्य भाव कहा जायगा परभाव इस गाथामें उदाहरणके रूपमें सामान्यका सद्भाव और विशेष याने गुणोंको परभाव कहा जाय, इतना ही मात्र जानकर कुछ लोग गुणोंको परभाव कह देत हैं और चैतन्य स्वभावको स्वभाव कह देते हैं, किन्तु इस प्रसगकी बातको जाननेमें उन्होंने भूल की है। यहाँ स्वभाव और परभाव बदल बदलकर कहे जाते हैं, जब सामान्य भावकी दृष्टिसे कथन हुआ तो सामान्यभाव स्वभाव कहलायेगा और विशेषभाव गुण शक्ति आदिक परभाव कहलायेगा। और जब उस ही वस्तुको शक्ति गुण आदिक विशेषभावकी दृष्टि से निरखा जायगा तो गुण स्वभाव कहलायेंगे और वस्तुका सामान्य स्वभाव परभाव कहा जाने लगेगा तो यों स्वभावसे अस्ति है और परभावसे नास्ति है।

सामान्यं विधिरेव हि शुद्धः प्रतिषेधकश्च निरपेक्षः ।
प्रतिषेधो हि विशेषः प्रतिषेध्यः सांशकश्च सापेक्षः ॥ २८१ ॥

सामान्य और विशेषका पर्यायवाची शब्दों द्वारा स्वरूप विवरण— सामान्य तो विधि ही कहलाती है और वह शुद्ध होती है, प्रतिषेधक होती है, एवं निरपेक्ष होती है, किन्तु विशेष प्रतिषेध कहलाता है और वह प्रतिषेध्य होता है, सांशक होता है, सापेक्ष होता है। यहाँ सामान्य भावको शुद्ध कहा है उसका अर्थ है कि उसमें कोई तरङ्ग विशेषतायें नहीं होतीं। वह सर्व विशुद्ध एक रूप है और वह समस्त प्रतिषेधोंका प्रतिषेध करने वाला है, जहाँ केवल विधि ही इष्टगत है वहाँ प्रतिषेध्य अंशका अवकाश ही कहाँ है ? अर्थात् जहाँ प्रतिषेध्य प्रतिषेध्यका अवकाश नहीं है वह स्वयं ही सहज प्रतिषेधक कहलायेगा और वह सामान्य भाव निरपेक्ष है, उसमें अन्यकी अपेक्षा तो दूर रहो काल मात्र सामान्यकी भी अपेक्षा नहीं है। सामान्य भाव निरपेक्ष भाव कहलाता है। अब विशेष भावकी बात देखिये ! विशेष भाव वहाँ ही होता है जहाँ भाग अथवा अंश बनाया गया हो। तो सामान्य भाव है वस्तुका स्वरूप और उसका भेद करके जाना गया है शक्ति गुण, तो शक्ति और गुण ये भाग करके जाने गए हैं इस कारण विशेष हैं। विशेष वही कहलाता है जो अन्यका प्रतिषेध कर सके। जितने भी लोकमें विशेषण होते हैं उन सबमें यही तारीफ है कि वे अपने प्रतिपक्षका विरोध करते हैं। जैसे कहा लाल गाय तो वहाँ लालके अतिरिक्त अन्य सब रङ्गोंका सफेद, काला, पीला आदिक सबका प्रतिषेध हो जाता है, तो विशेषमें विशेषता ही है कि वह अन्यका प्रतिषेध कर देता है। तो वह विशेष प्रतिषेधसे ही तो विदित हुआ। प्रतिषेध द्वारा गम्य हुआ। यह लाल गाय याने नीली, काली, पीली आदिक नहीं। इस प्रतिषेधके द्वारा ही वहां लाल गायका समर्थन हुआ है। अतः विशेष प्रतिषेध्य होता है और यों भी प्रतिषेध है कि उसके अतिरिक्त अन्य तत्त्वोंका

भी समकक्ष नहीं हुआ इसलिए वह प्रतिषेधके काबिल है। यों विशेषभाव अंश सहित हुआ। किसी वस्तुमें भाव सहित बना क्योंकि उसके अंश किए गए हैं। एक आत्मा आत्मा ही कोई कहता जाय तो सामान्य ही बात रही उससे तीर्थ प्रवृत्ति नहीं बनी। जब उसका विशेषण किया गया कहा गया, जिसमें ज्ञान दर्शन चारित्र हो, जो जाने देखे, रमे वह आत्मा है। तो अब जानन यह हुआ ज्ञान गुण देखना यह हुआ दर्शन गुण और रमना यह हुआ चारित्र गुण तो अंश कर दिए गए, विशेष तभी बना। तो विशेष भाव अंश सहित होता है तथा सापेक्ष होता है। किसी भी वस्तुमें कुछ भी भेद किये जायें तो उन भेदोंके किये जानेकी कोई अपेक्षा हुआ करती है। कैसी ही अपेक्षासे भेद किया हो, यह बात भेदोंमें बनेगी। तो भेद करके ही विशेष बना है अतएव वह सापेक्ष है। आत्माके भेद किए गए, ज्ञान, दर्शन चारित्र गुण तो अपेक्षा क्या रखी गई कि जो शाश्वत् हो, सदा रहे, तीनों कालकी अपेक्षा रख करके ये भेद किए गए, और जब कभी परिणमन, पर्यायका भेद कर दिया जायगा तो वहाँ क्या किया गया? एक कालके वर्तमानकी अपेक्षा करके कहा गया। तो जो भी विशेष होंगे उनमें भेद करनेकी कोई न कोई अपेक्षा होती ही है। तो जितने भी विशेष भाव हैं वे सापेक्ष भाव हैं। इस गाथामें सामान्य भाव और विशेष भावका विवरण किया गया है। अब भावको सामान्य और विशेष दो प्रकार बताकर हमें इस प्रसंगमें भाव क्या लेना है उसको यहाँ कहते हैं।

अयमर्थो वस्तुतया सत्सामान्यं निरंशकं यावत्।
भक्तं तदिह विकल्पैर्द्रव्याद्यैरुच्यते विशेषश्च ॥ २८२ ॥

सामान्यकी निरंशकता व विशेषकी विकल्पवानयता—सामान्य भाव और विशेषभाव अंश और निरंशकी पद्धतिसे होते हैं। जब तक सत्में अंश कल्पना नहीं की जाती तब तक वह सत् सामान्य कहा जाता है और जब उस सत् द्रव्यका गुणसे, पर्यायसे, किन्हीं भी रूपोंसे विभाग कर दिया जाता है तो वह विशेष कहा जाता है। तो अभी तक वही बात कही जा रही है विवरणके साथ जिस प्रकारका वर्णन प्रसंगमें आया हुआ है। सामान्य निरंश है और विकल्पोंके द्वारा कहा जाने योग्य विशेष हुआ करता है। तो यहाँ सामान्य भाव और विशेष भावको सुगम पद्धति से ऐसा जानें जैसे किसी वस्तुमें घटाया, आत्मामें घटाते हैं तो आत्मामें जो चैतन्य स्वरूप है, स्वभाव है वह तो है सामान्य भाव और उस स्वभावमें जब विभाग किया गया कि ज्ञान और दर्शन, तब यह हो जाता है विशेष भाव। सामान्य भाव और विशेष भाव यद्यपि कहीं पृथक पृथक द्रव्यकी बात नहीं है, वस्तु वही एक कही गई, किन्तु सामान्य भावके अवगमके समय जो प्रभाव है उपयोगमें और विशेष गुणके अवगमके समय जो प्रभाव है उपयोगमें उसमें अन्तर स्वयं अनुभव करने वालेको

विदित हो जाता है । तो सामान्य भाव और विशेष भाव इसी लिए ये अपने अपने स्वरूप जुदे रखते हैं पर प्रदेश प्रथक नहीं हैं, आधार उनका प्रथक नहीं है, तो तब सामान्यका अर्थ हुआ निरंश और विशेषका अर्थ हुआ अविकल्प तो इन दो पद्धतियों से इस वस्तुमें क्या दृष्टगत् होता है उसे अब कहते हैं ।

तस्मादिदमनवद्यं सर्वं सामान्यतो यदाऽप्यस्ति ।
शेषविशेषविवक्षाभावादिह तदैव तन्नास्ति ॥ २८३ ॥

भावकी अपेक्षासे स्यादस्ति स्यान्नास्तिका विवरण-इस कारण यहकथन निर्दोष है कि जिस सत् सामान्यरूपसे है, उस समय विशेषभावरूपसे नहीं है । विवक्षा सामान्यमें होतो दृष्टाके उपयोगमें वहसामान्यसहित ही दृष्टगत होता है जब विवक्षामें विशेष हुआ तो दृष्टाकी दृष्टिमें वह विशेष ही विवक्षित होता है जो विवक्षित है वह तो उपयोग करने वालेके आशयमें है, जो अविवक्षित है उसका उस दृष्टिमें अभाव है जैसे एक मोटा दृष्टान्त लो एक मनुष्य है वह तो बालक, जवान और वृद्ध इन तीन अवस्थाओंमेंसे ही होगा । लेकिन जब केवल मनुष्यत्वकी दृष्टिसे देखा जा रहा हो तो उस दृष्टिमें बचपन, जवानी, बुढ़ापा ये कुछ भी नहीं हैं, और जब घटना ही ऐसी हो काम ही इस तरहका हो कि बूढ़ा, या जवान या बालक की ही आवश्यकता है ऐसी दृष्टिमें केवल मनुष्य सामान्य दृष्टिमें न रहा, इस कार्यके लिए तो जवान ही होना चाहिए । बस उसे वही दिख रहा । तो जब विशेषकी दृष्टि होती है, वहाँ विशेषका अस्तित्त्व है । जब कभी बिरादरीकी बड़ी सभा होती है उस सभामें कुछ भी कहनेका अधिकार सर्व व्यक्तियोंको समान है । उस वक्त कोई काम बनानेके लिए एक सामान्य विवरण किया जाता है कि जिससे छोटासे छोटा भी अपनेको इस कार्यका प्रभु माने । उस समय भेदसे लाभ नहीं होता, क्योंकि वहाँ राय देनेका सबको समान अधिकार है । वह प्रसंग है बिरादरीका । लेकिन जहाँ कोई विशेष कार्य करनेकी घटना हो, कोई आफिसका काम हो सरकारी काम हो या कोई अन्य काम हो उसमें बिरादरी नहीं देखी जाती । वहाँ तो जो समर्थ है उस ही पुरुषका व्यवहार चल सकता है । तो सामान्य दृष्टिमें प्रभाव और कुछ है, विशेष दृष्टिमें प्रभाव और कुछ है । तो जब सामान्यका पदार्थ है तो शेष विशेषोंकी विवक्षा न होनेसे उस समय पदार्थ विशेषरूप से नहीं है । यों भावकी अपेक्षासे स्याद अस्दि, स्याद नास्तिका वर्णन चल रहा है । और वहाँ अब तक यह सिद्ध किया कि सामान्य भावसे जब है तब विशेष भावसे नहीं विशेष भावसे जब है तब सामान्य भावसे नहीं ।

यदि वा सर्वमिदं यद्विवक्षितत्वाद्विशेषतोऽस्ति यदा ।
अविवक्षितसामान्यात्तदैव तन्नास्ति नययोगात् ॥ २८४ ॥

विशेषभावकी अपेक्षासे अस्तित्वको दृष्टिके समय सामान्य भावके नास्तित्वका कथन—ऊपरकी गाथामें बताया गया था कि जब सामान्य दृष्टिसे देखनेपर वस्तु सामान्यरूपसे है तो जो है है, जो देखा गया वही विशेषकी विवक्षा न होनेसे विशेषापेक्षया वह ही नहीं है। अब इस गाथामें बतला रहे हैं कि जब विशेष भावकी अपेक्षा परखा जा रहा है तो विशेषभाव विवक्षित होनेसे विशेषभावकी अपेक्षासे ये सब जिस समय हैं, यह प्रतीत हो रहा है उस समय सामान्यकी विवक्षा न होनेसे अविवक्षित सामान्यकी अपेक्षासे उस समय वह नहीं है। यहाँ विवक्षितको तो कहा है स्वभाव और अविवक्षितको कहा है परभाव। सामान्यभावमें सामान्य एक स्वरूप लिया गया जिसका कि भेद न किया जाय और विशेषभावमें उस सामान्य स्वरूपको समझनेके अनुरूप विशेष अंश कर दिए गए। तो फिर वहाँ मुकाबलेमें दो भाव आ गए सामान्यभाव और विशेषभाव। जब सामान्यभाव विवक्षित है तो विशेषकी अपेक्षासे वस्तु नहीं है, जब विशेषभाव विवक्षित है तो सामान्यभावकी अपेक्षासे वस्तु नहीं है, इसी बातको स्पष्ट कर रहे हैं।

तत्र विवक्ष्यो भावः केवलमस्ति स्वभावमात्रतया।
अविवक्षितपरभावाभावतया नास्ति सममेव॥ २८५॥

विवक्षित भावकी दृष्टिके समय अविवक्षित भावके अभावकी दृष्टि—सामान्यभाव और विशेषभावमेंसे जब जो विवक्षित भाव हो वह तो कहलायेगा स्वभाव और उस स्वभावकी अपेक्षासे वह वस्तु है उसी समय परभाव कहलाया अविवक्षित। भाव तो अविवक्षित परभावसे है उस कारण उसी समय अविवक्षित भावकी अपेक्षासे नहीं है यह सिद्ध होता है। भावके सामान्य विशेषमें दो बातें दिखाई गई हैं कि सामान्य भाव तो है एक सर्वस्वसाररूप भाव जिसमें वस्तुका सर्वस्व सत्त्व समझमें आये वह तो है सामान्यभाव और उस सामान्यभावके ही अंश करके जो कि शक्ति और गुणोंकी अपेक्षासे बन रहे हैं शक्ति और गुणको बताना विशेषभाव है। और, जब स्याद अस्ति, स्याद नास्तिका इस भावकी अपेक्षासे वर्णन करने चलते हैं तो सामान्यकी विवक्षा होनेपर अस्ति जो कहलाया, विशेषकी विवक्षा न होनेसे वह नहीं है यों कहलायेगा। जिसकी विवक्षा की वह तो है स्वभाव और जिसकी विवक्षा नहीं की वह है परभाव। यहाँ स्वपरका भाव विवक्षा भी है न कि प्रदेश भेदके कारण है। अब भावकी अपेक्षा वस्तु स्याद अस्ति स्याद नास्ति जो बताया गया है उसका स्पष्टीकरण दृष्टान्त द्वारा कर रहे हैं।

संदृष्टिः पटभावः पटसारो वा पटस्य निष्पत्तिः।
अस्त्यात्मना च तदितरपटादिभावाविवक्षया नास्ति॥ २८६॥

भावापेक्षया स्यादस्ति स्यान्नास्तिके घटनका दृष्टान्त– जैसे कि पटका सामान्यभाव जो कुछ है वह पटभाव है जैसे पटकी निष्पत्ति कहा पटका जो सामान्य भाव है सामान्यतया वस्त्रको निरखनेपर केवल वस्त्रकी मुख्यतासे उसे निहारनेपर जो दृष्टि बनी है वह है पटभाव सामान्यभाव और उसके अतिरिक्त पट हीमें पाये जाने वाले जो भेद हैं ततु शुक्ल रूपादिक ही विशेषभाव हैं, तो जब पटका भाव विवक्षित हो रहा हो सामान्यभाव तो उस समय वह पदार्थ उस रूपसे है और भेद भाव शुक्ल तंतु आदिकरूपसे वे नहीं हैं। जो विवक्षित है उस रूपसे वह है और उससे भिन्न जो भी पट आदिक भाव हैं उनकी विवक्षा नहीं है, अतएव उस रूपसे वे नहीं हैं।

सर्वत्र क्रम एष द्रव्ये क्षेत्रे तथाऽथ काले च ।
अनुलोमप्रतिलोमैरस्तीति विवक्षितो मुख्यः ॥ २८७ ॥

वस्तुमें स्यान्नित्य स्यादनित्यका योजन—उक्त कथनमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे स्याद अस्ति स्याद नास्तिका वर्णन किया गया। वस्तुको जिन चार युगलोंसे गुम्फित बताया गया था उनमेंसे प्रथम युगलकी बात कही गई, अब शेष ३ युगल हैं - स्याद नित्य स्याद अनित्य, स्याद एक स्याद अनेक, स्यात् तत् स्यात् अतत् तो इन तीन युगलोंमें भी द्रव्य क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे यही क्रम जान लेना चाहिए। जैसे आत्माको नित्य अनित्य युगलसे गुम्फित बताना है कि आत्मा द्रव्यसे नित्य है व अनित्य है तो यों घटित करना कि पदार्थ सामान्य द्रव्यसे नित्य है और द्रव्यके भेद जो विशेष किए गए हैं उन दृष्टियोंसे अनित्य है, क्षेत्रकी अपेक्षासे सामान्य क्षेत्र दृष्टिसे नित्य है क्योंकि वह एक समान ही है और विशेष क्षेत्रकी अपेक्षासे वह अनित्य है। एक तो कल्पनामें विशेष क्षेत्रमें व्यतिरेक जा जाता है दूसरे जिन पदार्थों के प्रदेशका संकोच विस्तार है वहाँ संकोच विस्ताररूपसे स्पष्ट अनित्यता आ जाती है कि जिस प्रकार था अब उस प्रकार न रहा। आत्मा कालकी अपेक्षासे नित्य है और अनित्य है। एक सामान्यकालकी दृष्टिसे परिणमन मात्र लिया तो आत्माका परिणमन कहाँ विघटित होता है, वह सदैव चलता रहता है सो काल सामान्य परिणमनकी अपेक्षासे आत्मा नित्य है और विशेष परिणमन भी तो साथ लगा हुआ है, विशेष परिणमनों बिना सामान्य परिणमनका रूप ही क्या बनेगा ? तो विशेष परिणमनोंकी अपेक्षासे वह आत्मा अनित्य भी है यों ही भावकी अपेक्षासे सामान्यभावसे नित्य है और विशेषभावसे अनित्य है। भावमें आत्माका सर्वस्व सार लिया गया है। जब वह सामान्य दृष्टिसे देखा जा रहा है तो सामान्यभावकी विवक्षामें नित्य है और विशेषभावकी अपेक्षामें अनित्य है।

वस्तुमें स्यादेकत्व व स्यादनेकत्वका कथन—पूर्वोक्त दो युगलोंकी भांति

स्याद एक और अनेक इस युगलकी भी उत्पत्ति हो जाती है। आत्मा सामान्य द्रव्यसे एक है, वह एक ही है, अखण्ड है और विशेष द्रव्यकी अपेक्षा अनेक है, क्योंकि विशेष द्रव्यमें उसके भेद किए गए द्रव्य, गुण, पर्याय। गुण भी अनन्त, पर्यायें भी अनन्त। तब इन दृष्टियोंमें वह पदार्थ अनेक बन गया। इसी प्रकार सामान्य क्षेत्रकी दृष्टिसे आत्मा एक है, विशेष क्षेत्रसे अनेक है। आत्मा असंख्यात प्रदेशी है तिसपर भी सामान्य क्षेत्रकी दृष्टिमें वह असंख्यात प्रदेशी नहीं है, एक ही है अविभाज्य है। यों सामान्य क्षेत्रकी अपेक्षासे जीव सदैव इसी प्रकार है। अब विशेष क्षेत्रकी अपेक्षासे देखिये वहाँ आत्मामें असंख्यात प्रदेश जाता हुआ असंख्यात प्रदेशकी दृष्टिसे कल्पनामें भी अनेक है और जब संकोच विस्तार होता है क्षेत्रका प्रदेशका तो उस दृष्टिसे अनेक स्पष्ट विदित होता है। इसी प्रकार कालकी अपेक्षासे आत्मा एक और अनेक है। कालमें सामान्य और विशेष दो प्रकार हैं। सामान्यकाल मायने सामान्य परिणमन। सामान्य परिणमन तो वह एक ही है पर्यायमात्र और उसका विशेष परिणमन कैसा है? चूंकि उनमें भी व्यतिरेक है, दो भिन्न-भिन्न हैं अतएव वे अनेक है। इसको वर्तमान कालमें भी एक अनेक देखा जा सकता है। आत्मामें गुण अनन्त है। उन अनन्त गुणोंमें सभी प्रकारके परिणमन निरन्तर चलते रहते हैं। तो एक समयमें अनन्त परिणमन हैं। लेकिन वे सब परिणमनमात्रकी दृष्टिमें एक हैं। लो, परिणमन सामान्य एक ही समयमें बन गया। और जब जुदे जुदे परिणमनकी दृष्टि रखते हैं तो वहाँ परिणमन विशेष हैं, अनेक हैं। यों कालकी अपेक्षासे स्याद एक और अनेक घटित होता है भावके ढङ्गमें भी दो प्रकार हैं सामान्यभाव और विशेषभाव सामान्य भाव जैसे आत्मामें चैतन्य स्वभाव जो सर्वस्व साररूप है। जिसमें अन्तर्निहित हैं। अविभाज्य एक अखण्ड हैं, ऐसे चैतन्यभाव सामान्यभावकी अपेक्षासे आत्मा एक है और जब भावोंसे विशेष भेद करते हैं ज्ञान दर्शन चारित्र आदिक शक्तियोंका विभाग बनता है तो वहाँ जिस विभागकी दृष्टिसे देखा आत्मा उस ही मय विदित होता है और है इस तरह अनेक गुणमय। तो विशेषभावकी अपेक्षासे आत्मा अनेक है।

वस्तुमें स्यात् तत् व स्यात् अतत् धर्मकी उत्पत्ति—पूर्वोक्त तीन युगलों की तरह तत् अतत् इस चतुर्थ युगलकी भी उपपत्ति बन जाती है। जब सामान्य दृष्टि से देखते हैं सामान्य द्रव्यकी अपेक्षासे तो तत् ही समझमें आ रहा। सर्वदा नहीं हैं जब विशेष दृष्टिसे देखते हैं तो द्रव्यके विशेष भेद करके जो गुण पर्याय नाना समझे जा रहे हैं उन दृष्टियोंसे परस्परमें वे सब अतत् हैं। जो गुण हैं वे पर्याय नहीं, जो पर्याय हैं वे गुण नहीं और गुणोंमें अनेक गुण हैं। उनमें भी परस्पर अतत्पना है और भिन्न भिन्न पर्यायोंमें भी अतत्पना है। तो द्रव्यकी अपेक्षासे वस्तु तत्रूप भी है और अतत् रूप भी विदित होता है, क्षेत्रकी अपेक्षासे भी तत् अतत् है। सामान्य क्षेत्रसे वह वही है, वहाँ विषमता अन्यताका अवसर ही नहीं है। उसी वस्तुको विशेष क्षेत्रकी अपेक्षा

असंख्यात प्रदेशी हुआ तो यह कहना पड़ेगा उस दृष्टिमें कि असंख्यात प्रदेश परस्पर वे भिन्न-भिन्न हैं अन्यथा असंख्यात न ठहरेंगे, सर्व एक हो जायगा। तो अभिन्न होने पर भी, अविभाज्य होनेपर भी असंख्यातपनेकी सिद्धि अनेक माने बिना अतत् माने बिना नहीं बन सकती यों ही कालकी अपेक्षासे वस्तु तत् अतत् है, सामान्य कालकी दृष्टिसे वही वही है। एक परिणमन सामान्य वही तो देखा जारहा है, वस्तु सदा तत् है और विशेष कालकी अपेक्षासे वस्तु अतत् है, एक समयके परिणमनसे दूसरे समयका परिणमन जुदा है, वह वह नहीं है। यदि विशेषकालकी अपेक्षा भी अतत् न रहे तो वस्तु ही न रहेगा, परिणमन ही न रहेगा। तो कालकी अपेक्षासे वस्तु तत् अतत् सिद्ध हो जाता है। ऐसे ही भावकी अपेक्षासे वस्तु तत् रूप और अतत् रूप है। सामान्य भावमें तत रूप है वह वही है, और उस भावके विशेष भेद करनेपर जो ज्ञान है सो दर्शन नहीं, जो दर्शन है सो चारित्र नहीं यों अतत् रूप है।

अपि चैवं प्रक्रियया नेतव्याः पञ्चशेषभङ्गाश्च।
वर्णवदुक्तद्वयमिह पदवच्छेषास्तु तद्योगात् ॥ २८८ ॥

शेष भङ्गों सहित समस्त भङ्ग मिलाकर सप्तभङ्गीरूपमें वर्णन— चारों युगलोंकी द्रव्य क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा दो दो भङ्ग बताये गये हैं उस ही प्रक्रियासे शेष ५ भङ्ग भी लगा लेना चाहिए। यहाँ दो भङ्ग वर्णकी तरह इकहरे-इकहरे भङ्ग हैं और उनको मिलाकर जो पञ्च भङ्ग बनाये जायेंगे वे पदकी तरह मिला-जुलाकर बनाये जायेंगे। तब असंयोगी भङ्ग दो हैं और संयोगी भङ्ग ५ होते हैं। यहाँ दोको एक साथ देखनेपर अवक्तव्य भङ्ग होनेसे उसे भी संयोगी भङ्ग कहा गया है। यह एक विवक्षासे कहा गया है मुख्यतया तो यह पद्धति उत्तम है कि इकहरे भङ्ग तीन हैं जैसे स्याद् अस्ति स्याद् नास्ति, स्याद् अवक्तव्य। एक दृष्टिसे देखें तो अस्ति दूसरी दृष्टिसे नास्ति और सब कुछ एक बारमें ही देखनेकी दृष्टि होनेपर अवक्तव्य। तो जब तीन भङ्ग इकहरे होते हैं तो उनके संयोगी भङ्ग चार होंगे। ऐसा विधान है कि जितनी इकहरी चीजें होंगी उतने दूआ रख दी जाये और उनको परस्पर में गुणा करके फिर एक घटा दें तो सब भङ्ग उतने मिलेंगे। जैसे भङ्ग हैं तो ३ भङ्ग हैं तो ३ जगह २ रखदें और उन ३ दूओंको परस्परमें गुणित करदें। २×२ हुए ४ और ४×४ हुए ८। ३ दूओंका गुणनफल ८ हुआ। उसमेंसे १ कम कर देनेपर ७ होते हैं। यदि कोई चीज ४ हो इकहरी तो उसके भङ्ग कितने होंगे ? चार जगह दूआ रख दीजिए और उनको परस्पर गुणित कर दीजिए। २×२×२×२=१६ और १६मेंसे १ कम कर दिया तो १५ होते हैं। यदि चार चीजें हैं तो उनके समस्त भङ्ग इकहरे और संयोगी १५ होंगे। भङ्ग निकालनेकी बात लोग दृष्टान्तमें भी समझ

सकते हैं। यदि ३ वस्तुयें हैं भोजनकी—मानो नमक, मिर्च, खटाई तो इन तीनों चीजोंका स्वाद ७ प्रकारसे लिया जा सकता है। केवल नमक, केवल मिर्च केवल खटाई, नमक मिर्च मिलाकर, नमक खटाई मिलाकर, मिर्च खटाई मिलाकर दोके संयोगसे ३ भङ्ग हुए और तीनों मिलकर एक हुआ। नमक, मिर्च, खटाई तीनों मिला दिया। यों ७ प्रकारसे स्वाद हुए, भङ्ग हुए। तो यहाँ भी ३ स्वतंत्र भङ्ग हैं स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति, स्याद् अवक्तव्य। तो इनके मेलमें अर्थात् स्यात् अस्ति नास्ति, स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य। यों दोके संयोगमें ३ भङ्ग हुए और स्याद् अस्ति नास्ति अवक्तव्य इन तीनोंके मेलमें १ भङ्ग हुआ, यों ७ भङ्ग होते हैं।

सप्तभङ्गोंकी विवक्षायें—विवक्षासे ७ प्रकारके भङ्ग यों समझ लेना चाहिये। जब स्यात् अस्ति कहा तो उसमें विवक्षा है स्वभावकी। स्यात् नास्ति कहा तो उसमें विवक्षा है परभावकी। स्यात् अवक्तव्य कहा तो उसमें अपेक्षा है सबको एक साथ निरखनेकी। जब तीन भङ्ग ये होते हैं तो इनके मेलमें चार भङ्ग और किए जाते हैं। पहिले भङ्गमें जो अस्तित्त्व बताया है उसकी प्रधानतासे प्रतीति है। दूसरे भङ्गमें नास्तित्त्व धर्मकी प्रधानतासे प्रतीति है। तीसरे भङ्गमें एक साथ दोनोंकी प्रधानतासे अवक्तव्यरूप धर्मकी प्रतीति है। चौथे भङ्गमें क्रमसे दोनों धर्मोंकी प्रमुखता देकर प्रतीति है। ५ वें भङ्गमें अवक्तव्य धर्म सहित सत्त्व धर्मकी प्रतीति है। छठवें भङ्गमें अवक्तव्य धर्म सहित नास्तित्त्व धर्मकी प्रतीति है और ७ वें भङ्गमें क्रमसे प्रमुखताको प्राप्त हुए अस्तित्त्व नास्तित्त्वसे सहित अवक्तव्य धर्मकी प्रतीति हैं। तो वस्तु अनेकांतात्मक है। उसमें अनेकान्त बोधकी सिद्धिके लिए चार युगलोंसे गुम्फित वस्तु बताया है तो उस हीमें और विशेषताके साथ ७ भङ्गोंके रूपमें हैं यह दिखाया जाना भी आवश्यक है। यों सप्तभङ्गी रूपमें किसी भी एक धर्मकी प्रतीति करें तो कर सकेंगे।

वस्तुमें किसी एक धर्मके लक्षित करनेपर सप्तभङ्गिताकी उपपत्तिकी निश्चितता—अथवा इन सब वर्णनोंको यों समझिये कि कोई यदि किसी एक धर्मका भी अस्तित्त्व बताता है तो उसके साथ दूसरी अपेक्षासे नास्तित्त्व मिला हुआ ही होगा। जैसे कोई कहता है कि यह सच बोलता है तो उसके साथ यह बात भी जुड़ी हुई है कि यह झूठ नहीं बोलता दोनोंसे उस आशयकी पुष्टि होती है। पदार्थके स्वरूपकी दृष्टि जिस किसी भी धर्मसे की जाय तो उसके प्रतिपक्ष धर्मकी भी किसी अपेक्षासे सिद्धि है यह बात उसके साथ जुड़ी हुई है। तो एक कुछ भी कहा तो उसके साथ उसका प्रतिपक्ष जुड़ा है और जब २ चीजें सामने आ गईं तो दोनोंको एक साथ कहा जाना अशक्य है। अतएव अवक्तव्य भी साथ है। लो यों ३ भङ्ग हो गए। अब तो संयोग करके चार भङ्ग बनेंगे ही। यों सब मिलकर ७ भङ्ग हो जाते हैं। यों सप्त

भङ्गात्मक पद्धतिसे वस्तु चार युगलोंसे गुम्फित है और वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे चार युगलोंमें गुम्फित है। ऐसा समझिये कि अगर कोई सत् है तो उसे स तिपक्ष होना ही होगा और वहाँ सप्तभङ्गीकी उपपत्ति ही होवेगी।

ननु चान्यतरेण कृतं किमथ प्रायः प्रयासभारेण।
अपि गौरवप्रसंगादनुपादेयाच्च वाग्विलासत्वात् ॥ २८९ ॥

एक भङ्गसे ही सिद्धी हो जानेपर अन्य भङ्गके कहनेकी व्यर्थताका शंकाकार द्वारा कथन—अब यहाँ शङ्काकार प्रश्न कर रहा है कि जैसे यहाँ जो मूलमें दो धर्म कहे हैं अस्ति और नास्ति तो इनमेंसे किसी एक धर्मको माननेसे ही काम चल सकता है, फिर दोनोंको सिद्ध करनेका इतना प्रयत्न करना व्यर्थ है। जो बात सुगमतया संक्षिप्त विधिसे सिद्ध होती है उस बातको इतना बढ़ावा देना उसमें गौरव दोष आता है। और केवल वचनका विलास सिद्ध होता है। जब पदार्थकी सिद्धि एक अस्ति कहकर हो गयी तब नास्तिकी बात कहना प्रलापमात्र है। घट है, अपने स्वरूपसे है, बात बन चुकी अथवा कभी इस दृष्टिसे भी कहें कि यह घट अन्य रूप नहीं है तो उससे भी सिद्धि हो गयी, यहाँ कुछ कहा जाय उससे ही सब कुछ सिद्ध हो जाता है। फिर दूसरे धर्मको बताना व्यर्थ है। अथवा वह केवल वचनोंका विलास है, उसमें सार बात कुछ नहीं है। तब सप्तभङ्गीकी सिद्धि न हो सकेगी और चार युगल प्रतिपक्ष न बन सकेंगे। उनमेंसे एक एक बात ही सिद्ध हो पायगी। इसी शङ्का की बातको और स्पष्ट कर रहे हैं।

अस्तीति च वक्तव्यं यदि वा नास्तीति तत्त्वसंसिद्धयै।
नोपादानं पृथगिह युक्तं तदनर्थकादिति चेत् ॥ २९० ॥

एकसे अधिक भङ्ग कहनेकी अनुचितताका शंकाकार द्वारा कथन—इन दो धर्मोंमें स्यात् अस्ति स्यात्नास्ति अथवा उनमेंसे एक अनेकका युगल ले लें। एक कुछ भी कहो। एक कहो तो अनेक मत कहो, अस्ति कहो तो नास्ति मत कहो। विधि कह दी इतनेसे ही काम बन जायगा अथवा प्रतिपक्षका निषेध कर दिया इतने से ही काम बन गया। दोनोंको अलग अलग ग्रहण करना युक्त नहीं है, क्योंकि इनका अलग अलग ग्रहण करना अनर्थक ठहरता है। उसमें कोई प्रयोजन विदित नहीं होता वस्तुको जानना है सुगम विधिसे जान लीजिए और उस जाननेसे जो साधना बनानी है उस साधनाको बना लीजिए। व्यर्थका वचन विलाप करना और इतना ही नहीं, और भी संयोगी भङ्ग बनाकर बढ़ावा देना, यह तो एक वचन जाल है अतएव एक धर्म चाहे अस्ति बता दिया जाय अथवा नास्ति बता दिया जाय, इससे अधिक कहना

अनुचित है। अब इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं।

तन्न यतः सर्व सत् तदुभयभावाध्यवसितमेवेति ।
अन्यतरस्य विलोपे तदितरभावस्य निह्नवापत्तेः ॥ २६१ ॥

पदार्थोंकी विधि निषेधोभयाध्यवसितता होनेसे अनेक भंगात्मकताकी उपपत्ति बताते हुए शंकाकारकी शंकाका समाधान—शङ्काकारका यह कहना ठीक नहीं है कि या हो स्याद अस्ति ही बताया जाय या स्याद नास्ति ही बताया जाय। क्यों ठीक नहीं है, इसका कारण यह है कि जो भी पदार्थ हैं वे सभी पदार्थ विधि निषेधरूप भावसे युक्त हैं। घटके बारेमें कहा कि घट है घट घटरूपसे है, तो इस बातको कैसे मना किया जाय ? और मना करते हैं तो वस्तु नहीं रहती। अभाव हो गया, और जब यह कहते हैं कि घट पट आदिक रूपसे नहीं है तो इसको भी कैसे मना किया जाय ? मना करते हैं तो वह घट घट नहीं रहता। पट आदिक अन्य कुछ बन जाते हैं। तो दोनों बातें विशेषमें जब पड़ी हुई हैं वस्तुका स्वभाव ही इस प्रकार है कि अपने रूपसे ही सत होना और पररूपसे सत्ता न होना, तो इसको इन्कार कैसे किया जा सकता है ? तो सभी पदार्थ विधि विशेषरूप भावसे युक्त हैं। यदि उन दोनों मेंसे किसी भी एकको न माना जाय तो दूसरा भी नहीं माना जा सकता है। फिर तो पदार्थ कुछ रहा ही नहीं। पदार्थका अभाव हो जायगा। जैसे एक आत्माकी सिद्धि की जा रही है। आत्मा अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावसे है। दूसरी बात आत्मा आत्मा को छोड़कर सभी द्रव्योंके पदार्थोंके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे नहीं है। अब इन दोनोंमें किसका लोप करते हो ? आत्मा स्वचतुष्टयसे है। इसका लोप करनेका अर्थ हुआ। आत्मा है ही नहीं। आत्मा पर चतुष्टयसे नहीं है, इसका लोप करनेका अर्थ यह हुआ कि आत्मा पर चतुष्टयसे है। अन्य सब पदार्थ रूप है तो वहाँ भी आत्मा नहीं रहा। इस कारण स्यात् अस्ति, स्यात् नास्तिके दोनों भङ्गोंका रहना अनिवार्य है।

स यथा केवलमन्वयमात्रं वस्तु प्रतीयमानोऽपि ।
व्यतिरेकाभावे किल कथमन्वयसाधकश्च स्यात् ॥ २६२ ॥

व्यतिरेकके अभावमें अन्वयका भी लोप होनेका प्रसंग होनेसे वस्तुकी विधिनिषेधोमय गुम्फितताकी सिद्धि—वस्तु विधि और निषेध दोनोंसे गुम्फित है, उनमेंसे किसी एकका लोप कर देनेपर दूसरेका भी लोप हो जाता है। अर्थात् कोई एक न माननेपर फिर कुछ भी नहीं रहता है, इस ही बातको इस गाथामें दिखा रहे हैं कि जैसे वस्तुको यदि विधिरूप ही माना अन्वयरूप ही माना तो अन्वय मात्र वस्तु प्रतीत होती तो भी अर्थात् वस्तुको अन्वय मात्र मान लिया लेकिन व्यतिरेकके अभाव

में वह अन्वयका साधक बन कैसे सकेगा ? वस्तुमें केवल अन्वय माना है, सामान्य माना है, तो सामान्यका अर्थ क्या है ? जो समान रूपसे रहे सो सामान्य ! किसमें समान रहे, ऐसा कुछ अनेक मानना ही तो होगा। अनेक माने बिना सामान्यकी सिद्धि भी कैसे हो सकेगी ? जो अनेकमें एकरूप रहे उसे सामान्य कहते हैं। तो वस्तुको तो माना अन्वय मात्र, व्यतिरेक वहाँ माना नहीं तो व्यतिरेकके अभावमें अन्वयका साधक भी कुछ नहीं हो सकता है।

ननु का नो हानिः स्यादस्तु व्यतिरेक एव तद्वदपि ।
किन्त्वन्वयो यथास्ति व्यतिरेकोऽप्यस्ति चिदचिदिव ॥ २९३ ॥

शङ्काकार द्वारा अन्वयकी तरह व्यतिरेक मानकर भी विधिनिषेधोभय गुम्फितताका निषेध–ऊपर यह बताया गया है कि केवल अन्वयमात्र वस्तु मानने पर और व्यतिरेक न माननेपर वहाँ वस्तुमें अन्वयमात्रका साधक कुछ नहीं बन सकता भावार्थ उसका यह था कि व्यतिरेक न माननेपर अन्वय भी नहीं बन सकता है। इस पर शङ्काकार कह रहे हैं कि हमारी कुछ हानि नहीं है। अन्वयकी तरह व्यतिरेक भी मान लो सो रहा आये, अन्वय भी है, व्यतिरेक भी है। जैसे कि लोकमें चेतन पदार्थ भी हैं, अचेतन पदार्थ भी हैं, उनमें क्या हानि पड़ती है ? चेतन अपने स्वतंत्ररूपसे हैं, अचेतन अपने स्वतंत्ररूपसे हैं यों ही अन्वय अपने स्वतंत्ररूपसे है व्यतिरेक अपने स्वतंत्र रूपसे है। तो जैसे अन्वय माना गया वहाँ व्यतिरेक भी रहा आये दोनोंको भी मान कर हमें कोई आपत्ति नहीं है। विधि, व्यतिरेक दोनों भी रहें, इससे वस्तु विधिनिषेध दोनोंसे गुम्फित हो यह सिद्ध नहीं होता।

यदि वा स्यान्मतं ते व्यतिरेके नान्वयः कदाप्यस्ति ।
न तथा पक्षच्युतिरिह व्यतिरेकोऽप्यन्वये यतो न स्यात् ।२९४।

व्यतिरेकमें अन्वय न होनेकी तरह अन्वयमें व्यतिरेकका अभाव होनेमें दोनोंके स्वातन्त्र्यकी सिद्धिका शङ्काकार द्वारा कथन–शङ्काकार ही कह रहा है कि यदि कोई ऐसा समझे कि व्यतिरेकका अन्वय कभी नहीं पाया जाता तो ऐसा माननेसे भी हमें कोई हानि नहीं क्योंकि व्यतिरेक भी अन्वयमें नहीं पाया जाता। अन्वय और व्यतिरेक ये दोनों स्वतंत्र धर्म हैं यों कहो सामान्य और विशेष ये वस्तु में स्वतंत्ररूपसे रहते हैं अथवा ये पदार्थ ही पूर्ण स्वतंत्र हैं। तो अन्वयमें व्यतिरेक नहीं व्यतिरेकमें अन्वय नहीं ऐसा तो मंतव्य ठीक ही है। इसमें किसी भी प्रकारकी आपत्ति नहीं मानी जा सकती, रही आये, पर यह कहना ठीक कैसे जचेगा कि व्यतिरेकके अभावमें अन्वयका साधक कैसे हो सकता है ? व्यतिरेकमें व्यतिरेक है, अन्वयमें

अन्वय है उनकी अपने आपमें स्वतंत्र सत्ता है तो व्यतिरेक भी रहे, अन्वय भी रहे पर दोनोंमें अविनाभाव हो और ऐसा अविनाभावरूपसे अथवा एक ही दूसरे रूप हो इस तरहसे अन्वय व्यतिरेक नहीं माना जा सकता।

तस्मादिदमनवद्यं केवलमयमन्वयो यथास्ति तथा।
व्यतिरेकोऽस्त्यवशेषादेकोक्त्या चैकशः समानतया ॥ २६५ ॥

वस्तुकी विधिनिषेधोभयात्मकताके खण्डनमें शंकाकार द्वारा स्वतंत्र स्वतंत्र अन्वय व्यतिरेकका समर्थन— शङ्काकार ही कह रहे हैं कि इस कारण यह कथन निर्दोष है कि जैसे केवल अन्वय है उसी प्रकार व्यतिरेक भी है, याने दोनों समान हैं, जैसे चेतना और अचेतन पदार्थ। चेतन भी है अचेतन भी है, उनमें यह कहा जाय कि अचेतनके बिना चेतनकी सत्ता न रहेगी या चेतनके बिना अचेतनकी सत्ता न रहेगी, यह कोई माने नहीं रखता। चेतन अपनेमें अपनेरूपसे सत् है, अचेतन अपनेमें अपने रूपसे सत् है। इन दोनोंका अस्तित्व है पर उनमें अविनाभाव नहीं कह सकते कि व्यतिरेकके बिना अन्वय जीवित नहीं रह सकता या अन्वयके बिना व्यतिरेक जीवित नहीं रह सकता। रहे दोनों। तात्पर्य यह है कि जैसे जगतमें अनेक पदार्थ हैं फिर गुण कर्म आदिक इसी प्रकार सामान्य और विशेष भी स्वतंत्र पदार्थ हैं, उनमें यह बताना कि यह इसका अविनाभाव है यह बात युक्त नहीं हो सकती। उसके लिए दृष्टान्त भी सुनो।

दृष्टान्तोऽप्यस्ति घटो यथा तथा स्वस्वरूपतोऽस्ति पटः।
न घटः पटेऽथ न पटो घटेऽपि भवतोऽथ घटपटाविह हि ।२६६।

दृष्टान्तपूर्वक अन्वयव्यतिरेकके स्वतंत्र सत्त्वका शङ्काकार द्वारा समर्थन जैसे घट अपने स्वरूपकी अपेक्षासे है उसी प्रकार पट भी अपने स्वरूपकी अपेक्षासे है। घट पटमें नहीं है, पट घटमें नहीं है। दोनों ही स्वतन्त्र हैं ना! ऐसे ही अन्वय और व्यतिरेक सामान्य एवं विशेष ये दोनों अपने-अपने स्वरूपसे हैं सामान्यमें विशेष नहीं, विशेषमें सामान्य नहीं, दोनों ही रहे आये इसमें कोई पदार्थ सामान्य विशेष दोनोंको ही नियमतः गुम्फित हो, यह बात सिद्ध नहीं की जा सकती। पदार्थ भी पदार्थमें है। सामान्य सामान्यमें है, विशेष विशेषमें है। तो जैसे घट और पट ये भिन्न भिन्न स्वतंत्र स्वतंत्र पदार्थ हैं, उनकी परस्परमें कोई सापेक्षता नहीं है, अविनाभाव भी नहीं है, ऐसे ही सामान्य और विशेष दोनों ही रहे आयें किन्तु उनकी परस्परमें अविनाभाविकता न होनी चाहिये। और भी इस बातको स्पष्ट समझिये।

न पटाभावो हि घटो न पटाभावे घटस्य निष्पत्तिः ।
न घटाभावो हि पटः पटसर्गो वा घटव्ययादिति चेत् ॥२९७॥

दृष्टान्तपूर्वक अन्वय व्यतिरेकके अविनाभावके अनवसरकी शंकाकर द्वारा घोषणा जैसे घट पटका अभाव नहीं कहलाता और ऐसा भी नहीं है कि पट के अभावमें घटकी उत्पत्ति हो जाय। दोनों ही स्वतंत्र जुदे पदार्थ हैं, उनमें न अभाव के साथ व्याप्ति है न सद्भावके साथ व्याप्ति है। तो जैसे घट पटका अभाव नहीं है और पटके अभावमें घटकी उत्पत्ति नहीं है ऐसे ही पट घटका अभाव नहीं है। और, घटका व्यय होनेसे कहीं पट उत्पन्न नहीं हो जाता। तब बतलाओ घट और पटका परस्परमें क्या सम्बन्ध रहा ? कुछ भी बात तो नहीं रही। घटमें पटके कारण पटका सब कुछ है। यही बात सामान्य विशेषकी है। सामान्यके अभावका नाम विशेष नहीं है और न सामान्यके अभाव होनेपर विशेषकी उपपत्ति होती है, ऐसे ही विशेषके अभावका नाम सामान्य नहीं है और न विशेषका अभाव होनेपर सामान्यकी उपपत्ति होती है। दोनों ही स्वतंत्र पदार्थ हैं। और जब जहाँ जो संसर्ग अभीष्ट है जिस तरह उस तरह होता रहता है। पर यह कहना कि वस्तु सामान्य और विशेषसे गुम्फित है और सामान्य विशेषका परस्परमें अविनाभाव है, ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं मिलता कि जिन दो वस्तुओंको बताकर उनका अविनाभाव बताया जा सके। तो घट पट आदिककी तरह स्वतंत्र ही सामान्य और विशेष पदार्थ हैं। उनमें अविनाभावपनेकी बात कहना युक्त नहीं है।

तत्किं व्यतिरेकस्य भावेन विनाऽन्वयोरपि नास्तीति ।
अस्त्यन्वयः स्वरूपादिति वक्तुं शक्यते यतस्त्विति चेत् ॥२९८॥

अन्वय व्यतिरेकमें भिन्न भिन्न स्वरूपसत्त्वकी सिद्धि करते हुए शंका का उपसंहार—इस कारणसे व्यतिरेकके अभावमें अन्वय भी नहीं रहता, यह कहना युक्त नहीं है। शंकाकारकी शङ्का अपकरी कुछ गाथाओंसे चल रही है। उससे पहिले सिद्धान्त यह रखा गया था कि व्यतिरेकके अभावमें अन्वय भी न रह सकेगा इस कारण व्यतिरेक और अन्वय दोनों अन्वयभावी हैं। और प्रत्येक पदार्थमें ये दोनों शाश्वत गुम्फित हैं। इसपर यह शङ्का की गई है कि इन दोनोंको अविनाभाव कहा। ये दोनों स्वतंत्र हैं इनका अपना अपना स्वरूप है। सम्बन्ध आदिकसे जिस तरह ये साथ रहते हैं, रहते हैं पर उनका अविनाभाव बताना युक्त नहीं है। और यह कहकर कि व्यतिरेकके अभावमें अन्वय भी नहीं रहता यह धौंस देना भी ठीक नहीं है, व्यतिरेकके अभावमें भी अन्वय अपने स्वरूपसे है। जैसे कोई यह कह सकेगा क्या कि कपड़ा न हो तो घड़ा भी नहीं हो सकता। घड़ा अपने स्वरूपसे है कपड़ा अपने

स्वरूपसे है और कपड़ा न रहेगा न रहे उसका असर घटके सद्भाव और अभावपर कुछ नहीं है। तो ये घट और पट दोनों स्वतंत्र पदार्थ हैं। इसी प्रकार सामान्य और विशेष ये दोनों स्वतन्त्र पदार्थ हैं। अपने-अपने स्वरूपसे हैं इस कारण यह बताना कि अन्वय और व्यतिरेकका अविनाभाव है और उससे प्रत्येक वस्तु गुम्फित है। अब इस शङ्काका समाधान करते हैं।

तन्न यतः सदिति स्यादद्वैतं द्वैतभावभागपि च।
तत्र विधौ विधिमात्र तदिह निषेधे निषेधमात्रं स्यात्। २९६।

शङ्काकारकी शङ्काका समाधान करते हुए वस्तुकी सामान्यविशेषोभयरूपताकी सिद्धि शङ्काकारका यह कहना कि अन्वय और व्यतिरेक दोनों स्वतंत्र हैं, अपने-अपने स्वरूपसे हैं इनका परस्परमें अविनाभाव होनेका कोई मतलब नहीं, यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि सत् द्वैतरूप होकर भी कथंचित् अद्वैतरूप ही है। तो जब अद्वैतरूपताकी दृष्टि होती है तब वहाँ विधि विदित होती है। जब द्वैतरूपताकी दृष्टि होती है तब वहाँ निषेध विदित होता है। तो जब विधिकी विवक्षा होती है तब वह विधिमात्र है जब निषेधकी विवक्षा होती है तब वह निषेधमात्र है। शङ्काकारकी शङ्कामें यह आशय था जैसे कि कुछ दार्शनिक केवल विशेषको मानते हैं कुछ दार्शनिक सामान्यको मानते हैं। जैसे क्षणिकवादी केवल विशेषको ही मानते हैं और अद्वैतवादी केवल सामान्यको ही मानते हैं किंतु कुछ दार्शनिक ऐसे हैं नैयायिक आदि कि सामान्य और विशेष दोनोंको मानकर उनको स्वतंत्र-स्वतंत्र मानते हैं। और, पृथ्वी, जल, चेतन जीव मन आदिक पदार्थ हैं अथवा गुण क्रिया पदार्थ हैं उसी तरह सामान्य विशेष भी स्वतंत्र पदार्थ हैं। सामान्य और विशेष दोनोंको मानने वाले दार्शनिकोंने सत्का पूर्णरूप नहीं माना इसलिए गुणको अलग सत कर्मको अलग सत और सामान्य विशेषको अलग-अलग सत कहा है। वस्तु एक ही है, यह दृष्टिमें नहीं आया कि उस ही वस्तुका भेद करके समझाये जानेकी पद्धति है, किंतु भेद करके समझनेमें जो कुछ स्वरूप विदित हुआ उस स्वरूपको लक्ष करके उसकी स्वतंत्र सत्ता मानी जाने लगी। तो यों जब सामान्य भी समझमें आता है कि जैसे सब मनुष्योंमें मनुष्यत्व है तो मनुष्यत्व कह करके आशय कुछ जुदा बना है और जाति कुल अवस्था आदिककी अपेक्षासे उनमें भिन्नता है। तो सामान्य और विशेष दोनों स्वरूप विदित होनेके कारण दोनोंको स्वतंत्र सत मान लिया गया है और उसके आशयमें यह शङ्का की गई है कि सामान्य और विशेष दोनों भी रहे आयें तो भी उससे यह सिद्ध नहीं होता कि सामान्य और विशेषका परस्परमें अविनाभाव है। पर वास्तविकता यह नहीं है कि सामान्य विशेष स्वतंत्र हों। है एक पदार्थ, असाधारण रूपको लिए हुए। वह स्वयं है, इतने अस्तित्वमात्रसे सामान्यरूप है और उसमें चैतन्य अथवा रूप, रस

आदिक विशेष गुण हैं, इस रूपसे वहाँ विशेष है और उस ही वस्तुमें अनन्त गुण पाये जाते हैं, ये विशेष हुए और वही एक वस्तु सामान्य हुआ। तो इस सामान्य और विशेषका परस्परमें अविनाभाव है। सामान्य न माननेपर विशेष न ठहरेगा और विशेष न माननेपर सामान्य न ठहरेगा।

न हि किञ्चिद्विधिरूपं किञ्चित्तच्छेषतो निषेधांशम्।
आस्तां साधनमस्मिन्नाम द्वैतं न निर्विशेषत्वात् ॥३००॥

वस्तुके अलग अलग भागोंमें विधि निषेध कल्पनाकी असंगतता—उक्त समाधानको ही स्पष्ट कर रहे हैं कि ऐसा नहीं है कि वस्तुमें कोई भाग विधिरूप हो और कोई भाग निषेधरूप हो क्योंकि ऐसा माननेपर सत्की सिद्धिके साधन उपदेश तो दूर रहो, वहाँ तो द्वैतकी भी कल्पना नहीं की जा सकती। क्योंकि वह समस्त ही विशेषोंसे रहित माना गया है। वस्तु तो एक माना और उसमें कुछ भाग विधिरूप माना, कुछ भाग निषेधरूप माना तो वे दो ही चीजें बन गयीं। वे एक चीज न रही। जब दो चीजें रही तब वे अपनी अपनी स्वतंत्र स्वतंत्र हैं एक विधिरूप एक निषेध रूप। फिर विधिरूप जो चीज है वहाँ विशेष नहीं है, तो निर्विशेष होनेको असत् कहा जायगा। और जो निषेधरूप चीज है, व्यतिरेकरूप विशेषरूप है उसमें विधि न होनेसे सामान्य न होनेसे वह असत् हो जायगा तब वस्तुकी सिद्धि नहीं बन सकती। सत् क्या है? उसकी सिद्धि इस ढङ्गमें न हो सकेगी। और भी इसी विषयका स्पष्ट कर रहे हैं।

न पुनर्द्रव्यान्तरवत्संज्ञाभेदोऽप्यबाधितो भवति।
तत्र विधौ विधिमात्राच्छेषविशेषादिलक्षणाभावात् ॥ ३०१ ॥

वस्तुको विधिमात्र ही माननेपर सत्के अभावका प्रसङ्ग जैसे कि दो द्रव्य हों तो उनकी संज्ञा भी अलग अलग हैं तो जैसे दो द्रव्योंमें संज्ञा भेद होता है इस तरह यहाँपर एक वस्तुमें संज्ञाभेद मानना स्वतंत्र मानना यह नहीं बन सकता क्योंकि यदि ऐसा मान लिया जाय तो जो सामान्य है वह सामान्यमात्र ही रह जायगा, क्योंकि उसमें विशेषका कोई लक्षण न रहा। यदि पदार्थमें कुछ भाग विधि ही रूप माना गया तो उस भागमें तो विशेष कुछ न रहा। और, जब विशेष लक्षणका अभाव हो गया तो निर्विशेष सामान्य तो कुछ होता ही नहीं। तो वहाँ विधि भी न बन सकी। निषेध भी न बन सका। बल्कि बात यह है कि सत् वही है, पर सामान्य दृष्टिसे देखते हैं तो वह विधिरूप नजर आता है और विशेष दृष्टिसे देखते हैं तो वहाँ व्यतिरेक दृष्टिमें आता है। वस्तु वही है। यहाँ विधि और व्यतिरेक ऐसे भिन्न भिन्न नहीं हैं,

जैसे कि दो द्रव्य भिन्न भिन्न होते हैं पर भिन्न होकर उनका नाम जुदा जुदा होता है, वस्तु एक ही है। सामान्य दृष्टिसे सामान्यरूप दृष्टिगत होता है और विशेष दृष्टिसे विशेषरूप दृष्टिगत होता है। द्रव्यान्तरकी तरह विधि निषेध नहीं है जिससे कि यह मान लिया जाय कि एक वस्तुमें विधि भी रहे अलग और निषेध भी रहे अलग। तो यों वस्तुके दो भाग नहीं हैं। एक भाग विधि मात्र हो और एक भाग निषेधमात्र हो। वह समग्र वस्तु अखण्ड है और वह समग्र वस्तु विधि निषेधात्मक है। तो इस गाथामें यह बताया है कि यदि वस्तुके किसी भागको विधिरूप मान लिया जाता है तो वह विधि मात्र ही प्राप्त होगी। उसमें निषेध या विशेष या व्यतिरेकका अभाव होनेसे वह स्वयं सत् न रह सकेगा। अब निषेध पक्षको लेकर स्पष्टीकरण करते हैं।

अपि च निषिद्धत्वे सति न हि वस्तुत्वं विधेरभावत्वात्। उभयात्मकं यदि खलु प्रकृतं न कथं प्रतीयेत ॥ ३०२ ॥

वस्तुको निषेधमात्र ही माननेपर सत्के अभावका प्रसङ्ग और वास्तविक वस्तुत्वका निर्णय—अथवा वस्तु सर्वथा निषेध मात्र ही प्राप्त हो जायगी। यदि पदार्थको दो भागोंमें विभक्त किया जाय और एक भाग विधिमात्र और एक भाग निषेधमात्र ही कहा जाय तो जैसे विधिमात्र भागमें केवल विधि ही रहा, विशेष नहीं रहता, असत् हो गया, इसी प्रकार निषेध वाले भागमें केवल वह निषेधमात्र ही रहा, उसमें विधि का अभाव हो गया। तो जहाँ विधि ही नहीं सद्भाव ही नहीं उसका सत्त्व क्या है ? इस कारण जैसे वस्तुको केवल विधिमात्र नहीं मान सकते या उसके एक भागको विधि मात्र नहीं मान सकते इसी प्रकार वस्तुको निषेधमात्र नहीं कह सकते। अथवा उसके एक भागको निषेध मात्र नहीं कहा जा सकता हाँ यदि इन दोनों दोषोंसे बचनेके लिए यह कहा जाय कि वस्तु फिर विधि निषेधात्मक रही। समग्र ही वस्तु विधिरूप हो, समग्र वस्तु निषेधरूप हो तो ठीक है। वस्तुका स्वरूप ऐसा ही है, वस्तु विधि निषेधात्मक है। किसी सत् पदार्थकी सत्ता तब कायम है जब अपने स्वरूपसे हो और परस्वरूपसे न हो। इसी प्रकार एक वस्तुकी सत्ताका परिचय हमें कब मिल सकता है ? जब यह समझमें आया हो कि सामान्यरूपसे वस्तु सन्मात्र है और विशेषरूपसे देखनेपर वस्तु द्रव्यरूप है गुणरूप है पर्यायरूप है, तो यों भेदाभेदात्मक पद्धतिसे हम वस्तुके स्वरूपको समझ सकेंगे। इस कारण दोनों दोषोंसे बचनेके लिए वस्तुको उभयात्मक मानना चाहिए। सो वस्तुको ऐसे ही देखें कि वह स्वयं सहज अभेदरूप है, किन्तु उसमें विशेषतायें हैं ऐसी कि वह प्रतिसमय परिणमता रहे, उत्पाद व्यय करता रहे, बस इसी बातमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य धर्म सिद्ध हो गए, और उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी सिद्धिसे गुण पर्याय सिद्ध हो गए क्योंकि ध्रौव्यका आधार तो गुण और उत्पाद व्ययका आधार है पर्याय। तो यों गुण पर्यायोंका वस्तुमें निषेध भी सिद्ध होता

जो गुण है सो पर्याय नहीं, जो पर्याय स्वरूप है सो गुण स्वरूप नहीं और जब केवल सामान्य दृष्टिसे देखते हैं तो वह सामान्य मात्र ही सन्मात्र है। बस यही दृष्टगत् होता है।

तस्माद्विधिरूपं वा निर्दिष्टं सन्निषेधरूपं वा ।
संहृत्यान्यतरत्वादन्यतरे संनिरूप्यते तदिह ॥ ३०३ ॥

वस्तुकी विधिनिषेधात्मकता व विधिनिषेधकी परस्पर अन्तर्निहितता-उक्त समाधानसे यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि वस्तु वह एक ही। वही कभी विधिरूप कहा जाता है और कभी निषेधरूप कहा जाता है, विधि और निषेध परिचय में आते हैं इतने मात्रसे ऐसा संज्ञाभेद न समझना जैसे कि भिन्न भिन्न अनेक द्रव्योंमें संज्ञाभेद होता है, स्वरूप समझनेके लिए संज्ञाभेद है पर वस्तु भिन्न भिन्न नहीं हो जाते, क्योंकि विधि और निषेध परस्पर सापेक्ष हैं अतएव इनका एक दूसरेमें अन्तर्भाव हो जाता है। जैसे घटका सद्भाव और वही है अघटका अभाव। तो अघटका अभाव कुछ अलग चीज हो और घटका सद्भाव कुछ अलग चीज हो ऐसा नहीं है। वही एक तत्त्व विधिरूप निरखनेपर घटका सद्भाव विदित होता है और उसी वस्तुमें निषेधरूपसे निरखनेपर अघटका अभाव सिद्ध होता है। तो चूंकि ये सद्भाव और अभाव परस्पर सापेक्ष हैं अतएव अभावमें भाव अन्तर्निहित है और भावमें अभाव अन्तर्निहित है। निषेधरूप कहा वहाँपर भी विधि कहीं मिट नहीं गई और विधिरूप कहा तो वहाँ भी विवक्षित निषेध कहीं मिट नहीं गया अतएव ये जाननेकी पद्धतियाँ हैं। वस्तु वही एक है। वही सत् सामान्य दृष्टिसे विधिरूप विदित होता है और वही सत् विशेषरूपसे निरखनेपर निषेधरूप विदित होता है।

दृष्टान्तोऽत्र पटत्वं यावन्निर्दिष्टमेव तन्तुतया ।
तावन्न पटो नियमाद् दृष्टान्ते तन्तवस्तथाऽध्यक्षात् ॥ ३०४ ॥

भेददृष्टिसे निहारनेपर विशेषके दृष्टिगत होनेका दृष्टान्त—उक्त प्रसङ्गमें जो कुछ तत्वका स्वरूप बताया गया है उसका दृष्टान्त यह ले लीजिये कि एक वस्त्र है। उसी वस्त्रको जब हम तंतु रूपसे निरखते हैं तो वस्त्रमात्रकी प्रतीति न होकर तंतुओंकी ही प्रत्यक्षसे प्रतीति होती है। यहां वस्तुका निषेधरूपसे निरखनेपर क्या प्रतीत होता है? उसके लिए दृष्टान्त दिया गया है—भेद, निषेध, व्यतिरेक, अभाव ये सब इस प्रसङ्गके पर्यायवाची शब्द हैं। कपडेको एक विहङ्गम दृष्टिसे वस्त्रमात्र ही निहारना यह है सामान्य दृष्टि और उसमें इतने तंतु है, पतले मोटे हैं, अमुक रंगके हैं, क्या डीजाइन है आदिक बातोंको निरखना यह भेदरूपसे देखनेपर

निरखा गया। तो जब वस्त्रको भेदरूपसे निरख रहे हैं तब वहाँ प्रत्यक्षसे उन तंतु शुक्लादिकरूपकी प्रतीति होती है, पट मात्रकी प्रतीति नहीं होती। यही बात प्रत्येक सत्में है। जब हम किसी पदार्थकी शक्ति परिणमन शक्ति विशेष, परिणमन विशेषपर दृष्टि देते हैं तो हमें वहाँ भेद नजर जाता है। निषेध दृष्टगत् होता है। एकमें दूसरा नहीं व्यतिरेक विदित होता है। क्योंकि, उस समय हमारी दृष्टिने भेदको अंगीकार किया है। अभेदको नहीं देख रहा मगर इतने मात्रसे कहीं अभेद निराकृत हो जाता है ? इन भीटोंके बिना कोई भी कोठा नहीं बन सकता। अगर कमरेकी एक भींटको ही देख रहे हैं तो दूसरी भींटका अभाव हो गया उस समय वह नहीं दिख रहा। तो इस ही प्रकार वस्तुमें जब हम भेदको निरखते हैं तो अभेदका अभाव नहीं हो जाता।

यदि पुनरेव पटत्वं तदिह तथा दृश्यते न तन्तुतया।
अपि संगृह्य समन्तात् पटोऽयमिति दृश्यते सद्भिः ॥ ३०५ ॥

अभेद दृष्टिसे निहारनेपर सामान्यके दृष्टिगत होनेका दृष्टान्त— तो जैसे ऊपरकी गाथामें बताया है कि भेदरूपसे निरखनेकी दृष्टिमें भेदकी ही प्रतीति होती है अभेदकी नहीं तो इस गाथामें यह बतला रहे हैं कि अभेद दृष्टिसे निरखनेपर अभेदकी प्रतीति हो रही है भेदकी नहीं, उसके लिए दृष्टान्त दिया गया है कि वही पट जब केवल पट सामान्यरूपसे देखा जाता है तब विवेकी लोग उसे तंतुरूपमें न निरखकर उन तंतुओंके समुदायरूप पटपनेसे ही देखा करते हैं जिनमें परस्पर व्यतिरेक भरा होता है ऐसा तत्त्व वहाँ दृष्टिमें नहीं लिया जाता। जैसे कोई ऐसा उदासीन व्यक्ति है कि केवल तन ढकने को कपड़ा भी चाहिए तो वह जब किसी कपड़े को लेने के लिए निरखेगा तो पट मात्र की दृष्टिसे निरखेगा, अथवा यहाँ कुछ प्रयोजन वश भेद भी हो सकता है किन्तु स्वर्णके दृष्टान्तमें जैसे किसी भी पुरुषको स्वर्णमात्र लेना है आभूषणोंसे प्रयोजन नहीं है तो वह किसी भी चीजको देखकर स्वर्णमात्रकी दृष्टि से देखेगा और जो स्वर्ण है बस वही उसके लिए आदरकी चीज होगी और उतनेका ही वह मूल्य देगा। तो जब विशेषपर दृष्टि है तो वहाँ विशेषकी ही प्रतीति है, सामामान्यकी प्रतीति वहाँपर नहीं है। तब वस्तु विधिनिषेधरूप बना। न केवल विधिरूप, न केवलनिषेधरूप और इसी माध्यमसे वस्तुमें अस्तित्त्व धर्म देखा गया तो अस्ति नास्तिका युगल द्रव्य, क्षेत्र काल भावसे सिद्ध होता है वस्तुमें स्याद नित्यपना, स्याद अनित्यपना भी दृष्टगत् होता तो यह युगल भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सिद्ध होता है अतएव स्यात् एक स्यात् अनेकपना भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सिद्ध होता है। इसी प्रकार तत्पना और अततपना भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सिद्ध होता है। तो वस्तु ऐसे अनेकान्त स्वरूपसे गुम्फित है जहाँ सप्रतिपक्ष धर्म एक वस्तुमें एक साथ

रह रहे हैं। रह क्या रहे हैं वस्तु उस प्रकारसे है कि जिस प्रकारसे निरखनेपर हमें वस्तुमें विधि निषेध दोनों धर्म विदित हो जाते हैं।

इत्यादिकाश्च बहवो विद्यन्ते पाक्षिका हि दृष्टान्ताः।
तेषामुभयांगत्वान्नहि कोऽपि कदा विपक्षः स्यात् ॥ ३०६ ॥

अनेक दृष्टान्तों द्वारा पदार्थोंकी विधि निषेधात्मकताका परिचय— इस बातको सिद्ध करनेके लिए कि वस्तु विधिनिषेधात्मक है विधि द्वारा जो जाना गया, निषेध द्वारा भी वह जाना जाता है। इस सम्बन्धमें अनेक दृष्टान्त मिलेंगे। और, आत्मतत्त्वकी बात निरख लीजिए। आत्मा जो वस्तु है सो है अखण्ड है, कोई भी आत्मा वह अपने आपके द्रव्य क्षेत्र, काल भावमें हैं. लेकिन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी बात करना यह कल्पनासे है भेद व्यवहारसे है। वस्तुतः तो आत्मा जो है सो ही है, उत्पाद व्यय ध्रौव्य है। उस आत्माको जब हम समझानेके लिए उद्यत होते हैं तो वह द्रव्य गुण पर्यायके रूपमें कहा जाता है। तो अब गुणोंके रूपसे जब देखते हैं तो जो कुछ दीखा वह गुणोंकेरूपसे दिखनेपर ही तो दिखा। अभेद दृष्टिमें जो आत्मतत्त्व दिखना था वह न दिखा। तब भले ही दृष्टियाँ यहाँ दो हो गई, और उन दृष्टियोमें दो प्रकारसे आत्मा परखा गया लेकिन वस्तु वही है। जितने भी दृष्टान्त दिए जायेंगे वे सभी उभय धर्म वाले हैं। अभेद दृष्टिसे विधिरूप है और निषेध दृष्टिसे व्यतिरेकरूप है। इसी आत्मामें तो यह कहा जायगा कि जो गुणहै और गुण दृष्टिसे जो निरखा गया है वह पर्याय दृष्टिसे नहीं है पर्याय दृष्टिसे परिणमन देखा गया है गुण दृष्टिसे शाश्वत् धर्म शक्तियाँ विदितकी गई हैं। तो उनमें परस्पर निषेध होना जो गुण है सो पर्याय नहीं जो पर्याय है सो गुण नहीं पर आत्माको जब अभेद दृष्टिसे देखा तो देखते ही चले जाओ सर्वत्र विधि ही विधि है। तो यों प्रत्येक पदार्थ विधि निषेधात्मक है। कोई भी दृष्टान्त ऐसा न मिलेगा जो इस सिद्धान्तके विपरीत चल रहा हो।

अयमर्थो विधिरेव हि युक्तिवशात्स्यात्स्वयं निषेधात्मा।
अपि च निषेधस्तद्वद्विधिरूपः स्यात्स्वयं हि युक्तिवशात्। ३०७।

विधिनिषेधकी परस्पर अभिव्यञ्जकता उक्त कथनका तात्पर्य यह है कि वह स्वयं युक्तिके वशसे निषेधात्मक हो जाता है और उसी प्रकार निषेध भी स्वयं युक्तिके वशसे विधिरूप हो जाता है। यह गुणपर्यायमें परस्पर निषेधकी बात चल रही है कि जो गुण है सो पर्याय नहीं, जो पर्याय है सो गुण नहीं। गुण कोई स्वतंत्र अलग पदार्थ है क्या? अथवा पर्यायका स्वतंत्र अलग पदार्थ है। गुणमें भी वही

आत्मा पर्यायमें भी वही आत्मा। आत्माको अभेद दृष्टिसे निरखा गया है। तो जब भेददृष्टिसे निरखी हुई बातको अभेदरूपमें बतलाने लगते हैं तो तो वही विधिरूप बन गया। विधिरूपमें कही हुई बात जब निषेधरूपमें बतलाने लगते हैं, भेददृष्टिमें कह उठते हैं तो वही विषेधरूप बन गया। वस्तु वही एक है और वह है वस्तु विषेष उभयात्मक। केवल विध्यात्मक कहकर नहीं समझाया जा सकता है। केवल निषेधात्मक कहकर न समझाया जा सकेगा। वस्तु है और परिणामी है, बस इसी कथनमें विधिनिषेध आ जाता है। है पन जो कि सर्वथा विदित हुआ वह विधिदृष्टिमें विदित होता है और निषेधपन यह भी नहीं है, ऐसा व्यतिरेक जिस दृष्टिमें विदित होता है वह दृष्टि भेदरूप है, यों पदार्थ भेदाभेदात्मक है अथवा विधिनिषेधात्मक है। किन्हीं भी शब्दोंमें कहो सप्रतिपक्ष धर्म सहित होता है।

इति विन्दन्निह तत्त्वं जैनः स्यात्कोऽपि तत्त्ववेदीति।
अर्थात्स्याद्वादी तदपरथा नाम सिंहमाणवकः ॥ ३०८ ॥

विधि निषेधात्मक तत्त्वका निर्णय उक्त प्रकारसे जो व्यक्ति जानता है जानता है वास्तवमें, वही जैन सिद्धान्तका पारगामी है अर्थात् जैन है। जैन नाम बताया गया है जो जैन सिद्धान्तका यथार्थ पारखी हो और वही तत्त्वभेदी है, और वही वास्तवमें स्याद्वादी है। पदार्थ स्वयं अपने आपके सत्त्वको लिए हुए है। ऐसा कहनेमें यह बात तो आ ही जाती है कि पदार्थ किसी अन्य पदार्थके सत्त्वमें सहित नहीं है। पदार्थ वस्तुतः जैसा है सो ही है। इतना कहनेपर भी द्रव्य गुण पर्याय परिणमन शक्तियाँ उसके असाधारणरूप ये भी तो विदित होते हैं। साधारण गुण और असाधारण गुण दोनोंसे युक्त हो तो वस्तु है। कोई वस्तु क्या ऐसी मिलेगी जिसके केवल साधारण गुण ही हों। अस्तित्व, वस्तुत्व द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व ये ६ साधारण गुण कहे गए हैं। जो भी सत् हैं सबमें ये साधारण गुण पाये जाते हैं। लेकिन कोई सत् ऐसा न मिलेगा कि जिसमें उसका असाधारण गुण तो न हो और ये ६ साधारण गुण ही पाये जायें। क्योंकि असाधारण गुण हुए बिना वस्तुमें क्रिया क्या होगी? इन असाधारण गुणोंसे एक व्यवस्था नियत तो हो गई कि वस्तु है, अपने स्वरूपसे है और पररूपसे नहीं है और निरन्तर परिणमती रहती है। अपने ही गुणोंमें स्वरूपमें परिणमती है, परमें नहीं। और, वह प्रमेयवान है किसी न किसीके द्वारा ज्ञेय है, ऐसी साधारण व्यवस्था बनी है, मगर वस्तु कोई परिणमती किस प्रकार है? उसके परिणमनका व्यक्त रूप क्या है? यह बात पदार्थ में यदि नहीं है, कोई असाधारण गुण नहीं है, कोई असाधारण परिणमन नहीं है कोई व्यक्त रूप ही नहीं है तो वह सत् ही क्या रहेगा? और उसमें साधारण गुण ही कहाँ रहेंगे? तो वस्तु साधारण गुण और असाधारण गुण रूप है। अब उसमें

साधारण गुणोंकी दृष्टिसे तो विधि विधि ही सिद्ध होती है असाधारण गुणोंकी दृष्टि से निषेधकी बात आती है। तत्त्वकी बात एक पदार्थमें निरखी, तत्त्वकी बात परस्पर अपेक्षा लेकर सभी पदार्थोंमें निरखा, सब जगह विधि निषेधपनेकी बात समझमें आयगी। इस प्रकार जो वस्तुके अन्दर बाह्य स्वरूपको जानता है, भेदाभेदतत्त्वको जानता है वही जैन है, वही स्याद्वादी है और वही तत्त्वका जानकार हो सकता है। जिसको पदार्थके सम्बन्धमें यथार्थ बोध नहीं है वह तत्त्व स्वरूपको अनुभवमें ले सके ऐसी पात्रता ही नहीं रख रहा। तो जो इस तत्त्वके विमुख हैं वह तो सिंहमाणवक हैं अर्थात् किसी बच्चेका नाम यदि सिंह रख दिया तो क्या उसमें सिंह जैसा पराक्रम आ जायगा? वह तो बच्चा ही है, अल्प शक्ति वाला है, उसमें सिंहता कहाँसे आये? तो एक तो किसी बच्चेका नाम सिंह रख देना और एक वास्तविक सिंह जो कि बनमें रहता है, उन दोनोंमें अन्तर है। एक तो बनावटी सिंह है नाम रखा गया कल्पनाका सिंह है और एक मृगेन्द्र है जो कि जङ्गलका अधिपति जैसा है। इसी प्रकार जो एक तत्त्वको स्याद्वाद रीतिसे जानता है वह तो एक जानकारी है, दार्शनिक है और एक स्याद्वादके ढङ्गसे पदार्थको नहीं समझता है, थोड़ा ऊपरी कुछ ज्ञान कर लिया उससे ही सन्तुष्ट रहकर अपनेको तत्त्ववेदी मानता है, वह वास्तवमें तत्त्ववेदी नहीं है, काल्पनिक तत्त्ववेदी है।

ननु सदिति स्थापि यथा सदिति तथा सर्वकालसमयेषु ।
तत्र विवक्षितसमये तत्स्यादथवा न तदिदमिति चेत् ॥३०६॥

किसी भी दृष्टिमें अविवक्षितके असत्त्वके विषयमें शंका – अब यहाँ शङ्काकार शङ्का कर रहा है कि जिस प्रकार सत् एक स्थायी सत्त्व है नित्य है, उसी प्रकार सर्व कालोंमें भी वह पाया जा रहा है। तो जब पदार्थ सभी समयोंमें वही वही पाया जाता है उस ही प्रकार पाया जाता है फिर इसके बारेमें यह क्यों कहा जाता कि विवक्षित समयमें वह है और अविवक्षित समयमें वह नहीं है, और समयकी ही बात केवल नहीं, किन्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव ये चार प्रकारोंमें और उन चार युगलों को इस तरहसे बताया गया कि विवक्षित क्षेत्रसे है तो अविवक्षित क्षेत्रसे नहीं है। विवक्षितसे है और अविवक्षितसे नहीं है। बतायी गई है सबको एक ही पदार्थकी बात एक ही पदार्थमें विवक्षित और अविवक्षितपनेसे है और नहीं है की बात कैसे युक्त है? तो सभीमें है। जो वस्तु अखण्ड क्षेत्रसे है जैसे आत्मा एक पूर्ण है उसके क्षेत्रके टुकडे नहीं होते कि आधा आत्मा यहाँ हो आधा दूसरी जगह पहुंचे। वह तो पूरा एक अखण्ड है और वही असंख्यात प्रदेशी है याने उसके गुणोंका बड़ा विस्तार है जो असंख्यात प्रदेशोंमें फैले हुए हैं तो लो वह आत्मा असंख्यात प्रदेशी है। अब आत्माको यों कहना कि यदि अभेद क्षेत्रसे है तो भेद क्षेत्रसे नहीं है, भेद क्षेत्रसे है तो अभेद क्षेत्र

से नहीं है। उसमें विवक्षित और अविवक्षितके रूपसे अस्तित्व नास्तित्वकी बात क्या रही। विवक्षितरूपसे भी है और अविवक्षितरूपमें जो है सो भी है बात दोनों हैं याने आत्मा अखण्ड एक क्षेत्री है और असंख्यात प्रदेशी है। अस्तित्व तो नहीं मिट जाता। उसमें विवक्षित और अविवक्षितरूपमें अस्तित्व नास्तित्वकी बात क्या रही? अब इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं।

सत्यं तत्रोत्तरमिति सन्मात्रापेक्षया तदेवेदम् ।
न तदेवेदं नियमात् सदवस्थापेक्षया पुनः सदिति ॥ ३१० ॥

सकसदात्मकताका समर्थन करते हुए उक्त शंकाका समाधान—शंकाकारका कहना शङ्काकारकी दृष्टिमें ठीक है फिर भी उसका स्याद्वादके ढङ्गसे उत्तर तो सुनो सत् सामान्यकी अपेक्षा यह वही है ऐसा कहा जाता है। और सत्‌की अवस्थाओं की अपेक्षा यह वह नहीं है ऐसा कहा जाता है। द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव, इन चार प्रकारोंमें यह बात घटित कर लीजिए! यहाँ कालकी अपेक्षा बात कही जा रही है। जब एक सामान्य कालकी अपेक्षा बात कही जा रही है, जब एक सामान्य कालकी बात देखी जाती है तो परिणमन मात्र दीखा और परिणमन मात्रमें क्या दीखा? वह शाश्वत् रहने वाली वस्तु निरखी गई। तो यों सत् सामान्यकी अपेक्षा जब देखा गया तो सर्वत्र यही उत्तर हुआ कि यह वही है. किन्तु जब किसी सत्‌की अवस्थाओंपर दृष्टि देते हैं तो अवस्थायें तो भिन्न भिन्न समयोंमें भिन्न भिन्न होती हैं और कितनी ही अवस्थायें तो स्पष्ट भिन्न नजर आती हैं। विभाव अवस्थायें अनेक एक दम विरुद्ध सी जचती हैं। जैसे कोई पुरुष अभी क्रोध कर रहा था तो क्रोधमें वह एक दम क्षुब्ध हो रहा था। उसके बाद उसमें लोभ कषाय जगा तो लोभ कषायमें वह एकदम विपरीत दिखने लगा। तो कितना विपरीत परिणमन एकके बाद एक आ गया ऐसा स्पष्ट समझमें आता है। तो वहाँ यह कहा जायगा कि उसमें ही जो पहिले था सो अब नहीं रहा। तो जब सत्‌की अवस्थाओंकी अपेक्षासे कहा जाता है तो वहाँ यह निर्णय होता है कि यह वह नहीं है। यों सत्‌में अन्वय व्यतिरेक बराबर बना हुआ है। और, अन्वय व्यतिरेकात्मक सत् है, विधि निषेध उभयात्मक है, इस सिद्धान्तमें किसी भी प्रकार बाधा नहीं आता। तब तत्त्वकी सिद्धि इस प्रकार हुई कि वह सन्मात्र है और विधि निषेधात्मक है, भेदाभेदरूप है, परिणामी है। इस प्रकार वस्तु तत्त्व जानने वाले ही स्याद्वादी और तत्त्ववेदी कहे जाते हैं।

ननु तदतयोर्द्वयोरिह नित्यानित्यत्वयोर्द्वयोरेव ।
को भेदो भवति मिथो लक्षणलक्ष्यैक भेद भिन्नत्वात् ॥३११॥

तत् अतत् एवं नित्य अनित्यमें अन्तरकी जिज्ञासारूपमें शंका—शङ्काकारका यह कहना है कि तत् और अतत्में तथा नित्यत्व और अनित्यत्वमें कौन सा भेद है ? सिवाय इस बातके कि उनमें लक्षण और लक्ष्यकी बात समझमें आये। तो वहाँ नित्यपना उससे समझा जाता है कि वही वही है अथवा पदार्थ वहीका वही है। इससे समझा जाता है कि पदार्थमें अनादिपना है, सदा वही रह रहा है क्योंकि पदार्थ वहीका वही दृष्टिगोचर हो रहा है और पदार्थ वह नहीं है उसमें भिन्नता नजर आती है। जो था वह अब नहीं है। अब जो हो रहा है ऐसा पहिले न था, इस अतद्भावको छोड़कर यह ज्ञात होता है। वस्तु अनित्य है तो नित्यपना अनित्यपनाका जो युगल है उससे तत् अतत्पनेका युगलमें कोई भेद नहीं है। बात वहीकी वही कहा गई है। जब लक्ष्य लक्षण भेदके सिवाय इन दोनों युगलोंमें परस्पर भेद ही नहीं है तब फिर इनको अलगसे क्यों कहा गया है ? कोई सा भी एक युगल मान लिया जाता उससे ही यथार्थ बोधकी सिद्धि हो जाती है. इस कारण पदार्थको यदि चार युगलोंसे गुम्फित कहा गया था कि पदार्थ सत् असत्, एक अनेक, नित्य अनित्य, तत् अतत् इन चार युगलोंसे गुम्फित है सो तीन युगलोंसे गुम्फित कहा। तत् अतत्, नित्य अनित्य इन दोनोंका एक ही अर्थ है, इस कारण इन दोनों युगलोंको प्रथक प्रथक कहना व्यर्थ है। अब इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं।

नैवं यतो विशेषः समयात्परिणमति वा न नित्यादौ।
तदतद्भावविचारे परिणामो विसदृशोऽथ सदृशो वा ॥ ३१२ ॥

नित्यत्व अनित्यत्व तथा तत् अतत्के विचारके समय दृष्टभेद बताते हुए उक्त शंकाका समाधान—शङ्काकारका उक्त कथन यों ठीक नहीं है कि नित्य और अनित्य वाले युगलसे तत् अतत्पने वाले युगलमें भेद है। इन दोनों युगलोंमें परस्पर भेद यह है कि नित्यपनेका विचार करते समय तो केवल यही दिख रहा है कि परिणमन नहीं हो रहा है। और अनित्यपनेकी दृष्टिमें यह देखा जाता है कि प्रति समय परिणमन हो रहा है। तो नित्य और अनित्यपनेके विचार करते समय यह दृष्टिमें आता है और केवल यही निर्णय बनता है कि प्रतिसमय परिणमन होता है या नहीं? किन्तु जब तत् अतत् भावका विचार करते हैं तो वहाँ यह दृष्टिगत् होता है कि परिणमन सदृश हो रहा है या विसदृश, क्योंकि तत् इस दृष्टिमें यह भाव भरा है कि पदार्थ वहीका वही है। तो वहीका वही तब ही तो समझा जा रहा है कि जब सदृश परिणमन चल रहा है और अतत् है यह भी नहीं है यह तब ही समझा जाता है कि जब वहाँ विसदृश परिणमन चल रहा हो तो तत् अतत् भावका विचार करते समय यह निर्णयमें आता है कि परिणमन सदृश होता है या विसदृश ? इन दोनों युगलोंमें निर्णय और दर्शन जुदा—जुदा पड़ा हुआ है। इस कारण दोनों युगलोंका

वर्णन करना उपयुक्त है।

ननु सन्नित्यमनित्यं कथञ्चिदेतावतैव तत्सिद्धिः ।
तत्किं तदतद्भावाविचारेण गौरवादिति चेत् ॥ ३१३ ॥

नित्यत्व अनित्यत्वके विचारसे ही सिद्धि हो सकनेसे तदतद्भाव विचारकी व्यर्थताकी शंका—सत् कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है। जब इतना ही मात्र कह दिया गया तो उससे ही यह सिद्ध हो जाता है कि सदृश परिणमन है या विसदृश ? जहाँ अनित्यपनेकी बात कहा वहाँ विसदृशता सिद्ध हो ही जाता है, फिर तत् अतत् इन दोनों युगलोंके विचार करनेसे क्या प्रयोजन ? जो बात संक्षेपमें एक नित्य अनित्य दृष्टिसे सिद्धि हो गयी तब उस सम्बन्धमें अन्य प्रकार ढूढ़ना विचार करना इसमें तो गौरवका दोष आता है। गौरव दोष उसे कहते हैं कि बात तो सिद्ध हो गयी फिर भी उस विषयका विचारका बोझ और व्यर्थका लादा जा रहा है जिस विचार बोधके बिना भी कार्य सिद्ध हो रहा था। जैसे कोई भाषण करता हो और उसमें जो सार बात है वह कह चुका है अब उस सार बातको बार बार कई बार दुहराये तो वहाँ गौरव दोष बनता है। सुनने वाले लोग भी बोझसे दबकर परेशान हो जाते हैं सुनना पसंद नहीं करते। ऐसे ही जब यहाँ नित्य अनित्यपनेके विचारसे ही सब बात सिद्ध होती है, सदृश परिणमन है, विसदृश परिणमन है आदिक सब बातें जब सिद्ध हो गयीं तब अतत्भावको युगल कहा जाना, गौरवदोष वाली बात बनेगी। उससे सिद्धि कुछ नहीं है फिर क्यों यह चौथा युगल बताया गया है ? अब इसके समाधानमें कहते हैं।

नैवं तदतद्भावाभावविचारस्य निन्हवे दोषात् ।
नित्यानित्यात्मनि सति सत्यपि न स्यात् क्रियाफलं तत्त्वम् ३१४

तदतद्भावके विचार बिना क्रियाफल व तत्त्वकी सिद्धि न हो सकना बताते हुए उक्त शंकाका समाधान—शङ्काकारका उक्त कथन ठीक नहीं है क्योंकि यदि तत् असत्के सद्भाव अभावका विचार लुप्त कर दिया जाय तो यह दोष आता है कि सत् यद्यपि नित्य अनित्य है यह बात मान ली गई तिसपर भी जब वहाँ तत् अतत् भाव नहीं माना जा रहा तो क्रियाफल और तत्त्वकी सिद्धि नहीं बन सकती। जो कुछ भी क्रिया हुई है उस क्रियासे हमें जो कुछ भी बात ग्रहण करना है अथवा उससे जो कुछ भी बात बनती है वह तत् अतत् भावका ज्ञान होनेपर बनती है, परिणमन हो रहा ठीक है। मिट्टीमें घटका परिणमन हो रहा। अब घट बन चुकनेके बाद घटका जो उपयोग किया जा रहा है तो उपयोग करने वाला यह ही तो समझ रहा

कि हाँ घड़ा बन गया, अब मिट्टी नहीं रही, घड़ा पक गया तब ही उसका उपयोग किया जा रहा है। तो क्रिया फल, उपयोग, लोक व्यवहार वे सब तद्भाव और अतद्भावक समझनेपर निर्भर है। तो तद् अतद् भाव नहीं माना, और नित्यानित्यात्मक माननेसे क्रियाफल और लोक व्यवहार यह कुछ भी सिद्ध न हो सकेगा इस कारण नित्यानित्यात्मक युगल माननेपर भी तत् अतत् युगल मानना आवश्यक है, इसी कारण वस्तुको चार युगलोंसे गुम्फित कहा गया है। तत् अतत् माने बिना क्रियाफल की सिद्धि नहीं होती। इसी बातको स्पष्ट करनेके लिए गाथा कह रहे हैं।

अयमर्थो यदि नित्यं सर्वं सत् सर्वथेति किल पक्षः।
न तथा कारणकार्ये कारणसिद्धिस्तु विक्रियाभावात् ॥ ३१५ ॥

सर्वथा नित्य पक्षके क्रियाफलकी असिद्धिका प्रतिपादन—सम्पूर्ण सत केवल नित्य है, यह पक्ष तो केवल स्वीकार कर लिया, अब इतना मान लेनेपर भी किसी प्रकारकी क्रिया नहीं बनती इसलिए सत अनित्य है, यह भी तो मानना पड़ा। यहाँ यह विचार कि तद् अतद्भावके बिना क्रियाफलकी सिद्धि नहीं होती। कुछ लौकिक ढङ्गसे विचार कर रहे हैं। तो जैसे केवल पदार्थको नित्य मान लिया गया तो नित्यके मायने है वह अपरिणामी है और जहाँ किसी भी प्रकारका परिणमन है ही नहीं वहाँ क्रिया क्या बनेगी ? कारण कार्य कारक कुछ भी नहीं बनता। तब नित्य पक्ष मान लेनेके बाद जब क्रियाकी सिद्धि न बन सकी तो अनित्य पक्ष भी मानना पड़ा। अनित्य पक्ष मानलेने पर क्रिया बन जाती है। क्रियासे यह व्यक्त अर्थ होता है कि कुछ बात हुई और कुछ बात होना तब सिद्ध होता है जब कि कुछ परिणमन हुआ हो। पहिले और था अब और कुछ हुआ तो केवल नित्यपक्ष मानलेने पर कारण, कार्य कारक इनमेंसे किसीकी सिद्धि नहीं होती है। कारण कार्य कुछ नहीं रहा। जब केवल अपरिणामीं है तो क्या कारण और क्या कार्य और उसमें करने वाला भी कौन ? बाह्य साधन भी क्या और व्यक्तरूप भी क्या ? फिर पदार्थकी पहिचान भी क्या, पदार्थका अस्तित्त्व भी ज्ञान न हो सकेगा। तो केवल नित्यपक्ष माननेसे काम तो न चला था तब अनित्य पक्ष मानना चाहिए। यह बात समझमें आयी। अब आगेकी बात सुनो।

यदि वा सदनित्यं स्यातसर्वस्वं सर्वथेति किल पक्षः।
न तथा क्षणिकत्वादिह क्रियाफलं कारकाणि तत्त्वं च ॥३१६॥

सर्वथा अनित्यपक्षमें क्रियाफलकी सिद्धि न हो सकनेका वर्णन—जैसे सर्वथा नित्य पक्ष माननेपर क्रिया कार्य कारण आदिककी सिद्धि नहीं होती। इसी

प्रकार केवल अनित्य पक्ष माननेपर भी क्रिया फल कारक तत्त्व किसीकी भी सिद्धि नहीं होती। मान लिया गया कि सम्पूर्ण सत् केवल अनित्य है, केवल अनित्य है इसका यह भाव है कि वह केवल एक समयको ही रहता है। दूसरे समयमें कोई नई वस्तु आती है वह वस्तु दूसरे समय भी नहीं चल पाती है ऐसा केवल अनित्य पक्ष मान लिया गया तो वस्तु क्षणिक है एक क्षणमें उत्पन्न हुई अब वह दूसरे क्षणमें न टिक सकी। तो ऐसी क्षणिक बात जब मानी गई तो वहाँ क्रियाफल क्या? पदार्थ हुआ और तुरन्त नष्ट हो गया। उसका फल क्या रहा? करने वाला क्या रहा? तत्त्व क्या रहा? व्यवहार भी किसका किया जाय? तो यों केवल नित्य पक्ष मानने में भी क्रिया फल आदिककी कुछ भी सिद्धि नहीं हो सकती है। तब मानना पड़ेगा ना कि वस्तु अनित्य होनेपर भी कथंचित् नित्य है। कथंचित् अनित्य माननेपर फिर अनित्यपनेकी बात निरखकर क्रियाफल आदिक सिद्ध हो पाते हैं। तो जैसे केवल नित्य माननेपर क्रियाफलकी सिद्धि नहीं हुई और केवल अनित्य माननेपर क्रियाफलकी सिद्धि नहीं हुई। इसी प्रकार अब यह देखें कि सत्ता केवल नित्या नित्यात्मक माननेपर भी साध्यकी सिद्धि नहीं बन सकती। इसी बातको अब अगली गाथामें कह रहे हैं।

अपि नित्यानित्यात्मनि सत्यपि सति वा न साध्यसंसिद्धि।
तदतद्भावाभावैर्विना न यस्माद्विशेषनिष्पत्ति ॥ ३१७ ॥

तदतद्भावके विदित किये बिना नित्यानित्यात्मक माननेपर भी क्रिया फलकी सिद्धि न हो सकनेका कथन—यदि सत्को केवल नित्यानित्य माना जा रहा है तो नित्यानित्यात्मक पक्ष मान लेनेपर भी साध्यकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि क्रिया, क्रियाफल आदिक बात तो तब ही प्रकट होगी जब कि यह मान लिया जायगा कि यहाँ तद्भाव और अतद्भाव भी विदित हो रहा है। तद्भाव अतद्भाव माने बिना विशेषकी निष्पत्ति नहीं बतायी जा सकती। पदार्थमें जो भेद प्रतीत हो रहा है वह तो तद्भाव और अतद्भावसे ही जाना जा रहा है। नित्यानित्यात्मक युगलको यह समझ लिया गया कि वस्तु नित्य है, वहीकी वही है अपरिणामी है, अपने स्वभावका परिवर्तन नहीं है। सत्त्व भी कोई जुदा न बनेगा और अनित्य मानने से यह जान लिया गया कि प्रतिसमय परिणमन कर रहा है। अब फल भोगता या उससे कोई क्रियाफलका लोप आये तो यह बात तब तक नहीं बन सकती जब तक दृष्टिमें यह न आये कि यह वस्तु अब वह नहीं रही और वही वस्तु चल रही है तो यह वही है और यह वह नहीं है ये दो बातें जब तक विदित न हों तब तक क्रियाफल की सिद्धि नहीं हो पाती है। जैसे मिट्टीका घड़ा बनाकर उसका उपयोग किया जाता है। तो नित्यानित्यात्मक है पदार्थ इस कारणसे उसमें कुछ परिवर्तन किया

जा सक रहा है। माटी सानकर लौंदा बनाकर उसे चाकपर फैलाकर घड़ेका रूप बना दिया जाता है, उसे सुखाकर पका लिया जाता है। ये सब परिणमन हो रहे हैं अनित्य होनेके कारण लेकिन फलभोक्ताकी दृष्टिमें यह बात बनी हुई है कि वही माटी पर अब लौंदा आदिक नहीं रहा, पक गया है, अब यह आसानीसे फूट भी नहीं सकता। इसका उपयोग किया जा सकता है। अतद्भावकी बात जब उपयोगमें आती है तब तो फलकी सिद्धि होती है। तो नित्यानित्य युगलकी तरह तत अतत युगलका मानना भी आवश्यक है।

अथ तद्यथा यथा सत्परिणमनमानं यदुक्तमस्तु तथा।
भवति समीहितसिद्धिर्विना न तदतद्विवक्षया हि यथा ॥३१८॥

तदतद्भावकी दृष्टिसे समीहित सिद्धि – अब यदि सतका जैसा परिणमन है जैसा परिणममान सत है उसे वैसा ही कहा जाय। यदि ऐसी इच्छा करते हो याने पदार्थका सम्यग्ज्ञान यदि चाहते हो, पदार्थको जैसाका तैसा ही कहा जाना यदि अभीष्ट है तो तद्भाव और अतद्भावको स्वीकार कर लेना चाहिए क्योंकि तद्भाव और अतद्भावका युगल माने बिना, इसकी दृष्टि किए बिना इष्ट अर्थकी सिद्धि नहीं हो सकती। जितने भी लोकव्यवहार आदिक निःशंक परिणति हो रही है उसमें कारण तद्भाव और अतद्भावकी दृष्टि है। पदार्थमें यह समझा जा रहा है कि यह वही है और साथ ही यह भी समझा जा रहा है कि यह वह नहीं है, न परिणमन है, भिन्न बात है और दोनों ये सापेक्ष समझमें आ रहे हैं बिल्कुल भिन्न। सर्वथा भिन्न बातमें भी समिहितकी सिद्धि नहीं है। जैसे भिन्न-भिन्न दो द्रव्य हैं वे अलग-अलग हैं ऐसे अतद्भावसे बात नहीं बना रहे हैं किन्तु उस ही तद्भावमें अतद्भावको दृष्टि करके अर्थसिद्धि की जा रही है। पदार्थ वहीका वही है, यह भी ज्ञानमें हो और अब यह वह न रहा, दूसरा परिणमन है दूसरी अवस्था है यह भी ज्ञानमें हो तब लोक व्यवहार बनता है। केवल वही सर्वथा वही जिसमें कि अपरिणामीपनेका सम्बन्ध हो उस ज्ञानसे भी सिद्धि नहीं होती है। और सर्वथा भिन्न अनेक द्रव्योंकी भाँति जिनमें लगार भी कुछ नहीं, ऐसे भिन्नपनेमें अतद्से भी कोई सिद्धि नहीं होती किंतु ततमें ही अतत समझा जा रहा हो तो ऐसे तद्भाव और अतद्भावके विवेकसे समिहित अर्थकी सिद्धि होती है।

अपि परिणममानं सन्न तदेतत् सर्वथाऽन्यदेवेति।
इति पूर्वपक्षः किल विना तदेवेति दुर्निवारः स्यात् ॥ ३१९ ॥

तद्भाव स्वीकार किये बिना वस्तुत्वके लोपका प्रसङ्ग – तत् और

अतत्के कहनेसे नित्य अनित्य और परिणमनकी व्यवस्था ब ती है और समीहित अर्थकी सिद्धि होती है, इस बातको स्पष्ट कर रहे हैं। परिणमन करता हुआ सत वह नहीं है जो पहिले था, किंतु पहिलेसे सर्वथा भिन्न ही है, इस प्रकारका पूर्वपक्ष तत पक्षको स्वीकार किए बिना दूर नहीं किया जा सकता। याने परिणमता हुआ पदार्थ वही है, यह न माना जाय तो उसमें यह एकान्त बन जावेगा कि परिणमनमान पदार्थ समूल सर्वथा अन्य अन्य ही है। तथा यह भी नहीं कहा जा सकता कि परिणमन करता हुआ पदार्थ जो पहिले था उससे सर्वथा भिन्न है, पर्यायोंकी विभिन्नता होनेपर भी ये विभिन्न पर्यायें कैसे एक आधारमें हुई हैं ? ऐसे उस तत् भावको भी तो समझना होगा। जैसे अतत् पक्ष माननेसे ही यह बात जानी जा सकती है कि यह परिणमता हुआ पदार्थ पहिली अवस्थासे नवीन अवस्थारूप परिणम गया। अनित्य पक्षमें यद्यपि यह सिद्ध किया कि वस्तु अनित्य है, वह नहीं रहता, उसमें नवीन-नवीन अवस्था बनती है। पर नवीन अवस्था है, अनित्यपना है, जो अवस्था बनी वह मिट जाती है, यह बात कैसे समझी जाय ? इसको अतत् पक्ष समझाता है। जो पहिले था वह अब नहीं है, इसका बोध होनेपर जाना जाता है कि वस्तु बदल गयी। वस्तुका परिणमन जाना कैसे जाय, इस बातका यहां संकेत किया गया है। इसी प्रकार परिणत हुआ वस्तु वही है यह वृत्त तत् पक्षको स्वीकार करनेपर ही समझ सकते हैं। इस कारण नित्यानित्य युगलको कहकर यह तत अतत युगल कहना ही पड़ा।

अपि परिणतं यथा सद्दीपशिखा सर्वथा तदेव यथा।
इति पूर्वपक्षः किल दुर्वारः स्याद्विना न तदिति नयात् ॥३२०॥

अतद्भावको स्वीकार किये बिना अवस्थाओंकी उपपत्तिका अभाव— और भी देखिये ! परिणति करता हुआ सत दीपशिखाके समान वही है, ऐसा पूर्वपक्ष अतत पक्षको स्वीकार किये बिना दूर नहीं किया जा सकता। अतत भाव माननेपर ही अवस्थायें सिद्ध होंगी। अतत पक्षके स्वीकार किए बिना यह भी न माना जा सकेगा। जैसे दीपशिखा बिल्कुल नवीन तेलमें आनेसे नये-नये बनते चले जाते हैं नया नया परिणमन होनेपर भी विदित नहीं होता नया-नया, किंतु वही एक दीपशिखा, तो जैसे दीपशिखा परिणत होनेपर भी वहीका वही समझमें आती है तो कैसे आई ? उसमें बोध रहा कि यह वही तो शिखा है जो पहिलेसे चल रही है, किंतु है वहाँ नवीन नवीन परिणमन ! ऐसे ही पदार्थमें परिणत हुआ पदार्थ वही है यह बात तत पक्षके स्वीकार करनेपर ही जैसे विदित हो जाती है ऐसे ही अवस्थाओंका परिचय अतद्भावको माने बिना हो नहीं सकता। सो तत अतत युगलमें भी वस्तु गुम्फित है यह कथन भी युक्तिसङ्गत है। वस्तुको चार युगलोंमें परखा जाता है—वस्तु है और नहीं है, अपने चतुष्टयसे है पर चतुष्टयसे नहीं है, वस्तु नित्य है अनित्य नहीं है, वस्तु

एक है और अनेक है, अभेद विवक्षासे एक नजर आता है भेद विवक्षासे अनेक नजर आते हैं। इसी प्रकार वस्तु तत्स्वरूप है और अतत्स्वरूप है। वस्तुमात्रको निरखनेसे तत ततका बोध होता है। वहीका वही है और पर्यायोंको निरखनेसे अततका बोध होता है। यह वह नहीं है। तो तीन युगलोंकी भाँति तत अततका युगल भी वस्तुके सम्यक अवबोधमें सहायक होता है।

तस्मादवसेयं सन्नित्यानित्यत्ववत्तदतद्वत् ।
यस्मादेकेन विना न समीहितसिद्धिरध्यक्षात् ॥ ३२१ ॥

वस्तुकी तदतद्भावसे गुम्फितताका निर्णय—जब तत अतत पक्ष स्वीकार किया गया तब नित्य अनित्यपनेका बोध बना तो इस कारण नित्य अनित्यके समान तत अतत रूप है वस्तु, यह मान लेना ही चाहिए। क्योंकि तत अततमें किसी एकके माने बिना अर्थकी सिद्धि नहीं हो सकती है। हम स्पष्ट समझ रहे हैं कि यह पदार्थ नित्य है, कैसे जाना कि वहीका वही है जब यह विदित हुआ तो इस ज्ञानसे ही यह समझमें आया कि पदार्थ ध्रुव है। और जब पर्यायोंपर दृष्टि देकर कहते हैं कि पदार्थ अनित्य है तो यह भी बात कैसे समझमें आई कि जब इसने समझा कि अब यह वह नहीं है जो पहिले था उससे ज्ञान बना कि वस्तु अनित्य है। तो वस्तुके स्वरूपको समझनेके लिए ही ये सब विधियां बताई गई हैं और स्वरूपकी समझ जैसे उन ३ युगलोंके माध्यमसे होती है तत अततके युगलसे भी सिद्धि होती है। इस कारण यह बात निर्विवाद होती है कि पदार्थ चार युगलोंमें गुम्फित है और वे चारों युगल द्रव्य, क्षेत्र काल भावकी अपेक्षासे घटित हैं। इस तरह अनेकान्त बोधकी शुद्धि बनती है और उस शुद्धिसे पदार्थका अवगम होता है।

स्वरूपसाधनमें चार युगलोंकी अनिवार्यता—कोई भी धर्म माना जाय, उसमें ये चार युगल सिद्ध होंगे ही! जब कहा जाय कि आत्मा ज्ञानमात्र है तो ज्ञान मात्र है इतना कहनेपर भी ज्ञानमात्रका स्पष्ट बोध तब हो सका जब इसकी अनेकांत बोधसे शुद्धि की गई है। आत्मा ज्ञानमात्र है, अर्थात् ज्ञानमात्र जो भीतरी तत्त्व है स्वरूप है उसकी अपेक्षा सत् है और ज्ञान बनता है कब? जब कुछ जानन हो। तो ज्ञानके कहते ही प्रतिपक्ष ज्ञेय और आ गया। यह ज्ञेय अन्तर्ज्ञेयाकाररूप है एक वस्तुमें सप्रतिपक्षता कही जा रही है तो ज्ञेयकी अपेक्षासे यह ज्ञानमात्र आत्मा असत् है और ज्ञानमात्रकी अपेक्षासे आत्मा सत् है। अब यहाँ देखना है कि ज्ञान एक है और ज्ञेयमें ज्ञेय जानन उतना होरहा जितना कि जगतमें पदार्थ समूह है उतना ही यह अन्तर्ज्ञेयाकार बन रहा है। तो एक ही वस्तुमें निरख रहे हैं ज्ञानकी अपेक्षा एक है और ज्ञेयाकारकी अपेक्षा अनेक है। अब ज्ञानस्वरूप तो वहीका वही है और उसका

जो कार्य होरहा है ज्ञेयाकारोंमें प्रतिभास उसकी दृष्टिसे अनेकता है तो यों ज्ञानमात्र वस्तु ज्ञानस्वरूपसे एक है और अन्तर्ज्ञेय स्वरूपसे अनेक है। अब वही ज्ञानमात्र आत्मा जब केवल सहज ज्ञानस्वरूपसे परखा जारहा है तब एकरूप है और ज्ञान क्या ? ज्ञेय का प्रतिभास ! तो यों अन्तर्ज्ञेयाकारके रूपमें देखा जारहा है तो वह अनेकरूप है। यों ज्ञानमात्र आत्मवस्तु कहनेपर भी वह वस्तु चार युगलोंसे गुम्फित सिद्ध होती है। वस्तुका स्वरूप है, इसी प्रकार है कि जिसका प्रतिपादन पूरा किया जाय तो चार युगलोंमें ही बताया जा सकेगा। जब उस ज्ञानमात्र आत्मवस्तुको केवल ज्ञान ज्ञानदृष्टि से देखा तो वह तद्रूप है और जब अन्तर्ज्ञेयाकाररूपसे देखा तो प्रतिसमय वहाँ नया नया रूप है अतएव अतद्रूप हैं। यों प्रत्येक पदार्थ चार युगलोंसे गुम्फित होता है।

ननु भवतु सर्वथैव हि परिणामो विसदृशोऽथ सदृशो वा।
ईहितसिद्धिस्तु सतः परिणामित्वाद्यथाकथञ्चिद्वै ॥ ३२२ ॥

सत्को परिणामी मान लेनेसे अर्थसिद्धि हो जानेके कारण तदतद्भाव की कल्पनाकी व्यर्थताका शङ्काकार द्वारा कथन—अब यहाँ शङ्काकार शङ्का करता है कि परिणाम चाहे सर्वथा सदृश हो, किसी भी प्रकारका परिणाम चाहे सर्वथा सदृश हो या सर्वथा विसदृश हो किसी भी प्रकारका परिणमन होता रहा हो, अब उसमें तत् अतत् भावके न माननेसे क्या हानि है ? क्योंकि अर्थक्रिया, क्रियाफल, इष्ट अर्थकी सिद्धि तो सत्को कथंचित् परिणामी मान लेनेसे हो जाती है। सत् है और कथंचित परिणामी है इतने बोधसे अर्थक्रिया, क्रियाफल सबकी सिद्धि हो जाती है। अब उसमें तत्रूप और अतत्रूप माननेकी आवश्यकता ही क्या है ? तत्रूप सदृश देखकर ही तो कहते हो, अतत्रूप विसदृश देखकर ही तो कहते हो। परिणमन हो रहा है सो परिणमन होनेसे क्रिया और क्रियाफल बन जाते हैं फिर उसमें और गौरव क्यों बढाते कि तद्रूप और अतद्रूप भी मान लेना चाहिए। तात्पर्य यह है कि तत् अतत् युगल माने बिना वस्तुको परिणाममात्र माननेसे अर्थक्रिया और क्रियाफल की सिद्धि होती है इस कारण चतुर्थ युगलकी बात कहना निष्

तन्न यतः परिणामः सन्नपि सदृशैकपक्षतो न तथा।
न समर्थश्चार्थकृते नित्यैकान्तादिपक्षवत् सदृशात् ॥ ३२३ ॥

तदतद्भाव माने बिना नित्यत्वैकान्तकी तरह सदृशपक्षके एकान्तसे भी अर्थ सिद्धिका अभाव—उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं। शङ्काकारका यह कहना कि तत् और अतत् युगलके माने बिना सत्को परिणामी मान लेने मात्रसे पदार्थमें अर्थ क्रिया और क्रियाफलकी सिद्धि हो जाती है। अब उसमें यह परखनेसे क्या लाभ

है कि वह सदृश परिणामी है या विसदृश ? कैसा भी परिणाम रहे। सत् परिणामी है और जब परिणामी है तो उसमें क्रिया बन गई। जब क्रिया बन गई तो व्यवहार का उपयोगी हुआ। तो तत् अतत्के माने बिना केवल परिणामी मान लेनेसे अर्थ सिद्धि है यों शङ्काकारका आशय है, और वह आशय ठीक नहीं है। कैसे ठीक नहीं है उसको सब दृष्टियोंसे घटित कर रहे हैं। देखिये ! परिणाम होकर भी वह सदृशरूप होता है ऐसा पक्ष माननेसे कोई लाभ नहीं है, क्योंकि नित्य एकान्त आदिक पक्षकी तरह सदृश परिणामके माने जानेपर भी वह कार्य करनेमें समर्थ नहीं हो सकता।

नापीष्टः संसिद्ध्यै परिणामो विसदृशैकपक्षात्मः।
क्षणिकैकान्तवदसतः प्रादुर्भावात् सतो विनाशाद्वा ॥ ३२४ ॥

तदतद्भाव माने बिना क्षणिकैकान्तपक्षकी तरह विसदृशत्वपक्षैकान्तसे भी अर्थ सिद्धिका अभाव—जिस प्रकार परिणमन होकर सदृशात्मक माननेका पक्ष रखनेसे एक सदृश परिणामकी ही बात सिद्धकी सो वह पक्ष कार्य करनेमें समर्थ न हो सका जैसे कि नित्य एकान्त माननेसे अपरिणामी बना, कोई नई बात बने ही नहीं तो वहाँ कार्य नहीं बनता। तो यों ही जब पूर्णतया सदृश ही परिणमन रहा तो नवीनता तो आयगी नहीं तो वहाँ भी कुछ कार्य करनेमें सामर्थ्य न होगी, ठीक इसी प्रकार सर्वथा विसदृश परिणाम मान लिया जाय तो वहाँ भी वह कार्य सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि सर्वथा विसदृश परिणाम माननेका अर्थ होगा, जैसे क्षणिक एकान्त पक्षमें जो देखा गया उस प्रकार। तो सर्वथा विसदृश परिणाम माननेमें यह बात आ जायगी कि असत्की उत्पत्ति हुई और सत्का विनाश हुआ। विसदृश ही तो हुआ। सदृशता तो कुछ भी दृष्टिमें न रही और सर्वथा विसदृशताका अर्थ हुआ कि नवीन परिणति बनी तो असत्की उत्पत्ति और विनाशका प्रसंग आता है जैसे कि क्षणिक एकान्त पक्ष माननेमें दोष है वही दोष सर्वथा विसदृश माननेमें आता है। तब क्या मानना चाहिए सो बताते हैं।

एतेन निरस्तोऽभूत् क्लीवत्वादात्मनोऽपराद्धतया।
तदतद्भावा भावापन्हववादी विबोध्यतेत्यधुना॥ ३२५ ॥

तदतद्भावका अपलाप करने वालेको विबुद्ध करनेका उपक्रम उक्त मान्यताओंमें तद्भावका और अतद्भावका लोप किया गया था सो उसके तद्भावका लोप करनेपर भी अर्थकी सिद्धि नहीं होती और अतद्भावका लोप करनेपर भी कार्य की सिद्धि नहीं होती। जैसे कि नित्य एकान्तमें कार्य न बनेगा विक्रिया ही कुछ न होगी वैसे ही अनित्यैकान्तमें भी कार्य न बनेगा, क्योंकि वहाँ नवीन ही कुछ हुआ।

कार्य कारणका अवसर ही क्या ? यों तद्भाव और अतद्भावका लोप करनेसे यह दोष आता है, अतः कोई तद्भाव और अतद्भावका अपलाप नहीं कह सकता। और कोई अगर करेगा तो वह अपराधी है, वह कुछ सिद्धि करनेमें समर्थ हो ही नहीं सकता इस कारण उसका मंतव्य निराकृत हो जाता है। मानना चाहिए तब क्या, सो सुनिये यदि वस्तु स्वरूपका ढङ्गसे ज्ञान करना है तो समझना चाहिए यह कि जैसे वस्तु नित्यानित्यत्व युगलसे गुम्फित है उसी प्रकार वस्तु तद्भाव और अतदभावके युगलसे गुम्फित है। सो अब उसीको ही समझाया जायगा जो तद्भाव और अतद्भावका अपलाप कर रहा है। तदभाव और अतदभावके युगलसे वस्तु गुम्फित है, इतना तो संक्षेपरूपसे अभी कह ही दिया गया है कि केवल नित्य मान लेनेसे यह बोध हुआ कि पदार्थ बस वही एक मात्र है। उसमें कुछ भी फेर परिवर्तन अवस्था नहीं बनती। तो वहाँ और कोई बात नहीं जानी गई। कार्य सिद्धि कैसे हो ? इतना तक भी नहीं समझा गया कि सदृश परिणामों ज्ञात होता है, किन्तु तद्भावमें ध्रुवता ज्ञात होती है परिणमन होनेपर भी वहीका वही है यह दृष्टि तद्भावमें आती है और नित्य होनेपर अगर सदृशताकी दृष्टि लाये क्योंकि अपरिणामी है वहीका वही सदा है तो सर्वथा सदृश बन जायगा यों ही केवल अनित्य एकान्त माननेपर सर्वथा विसदृश बन जायगा और सर्वथा सदृश और सर्वथा विसदृश माननेमें अर्थक्रिया नहीं बनती। तो सर्वथा सदृश और सर्वथा विसदृश वह परिणाम सिद्ध न हो इस कारणसे तद्भाव व अतदभाव को मान लेना चाहिए। नित्यानित्यत्वमें गर्भित कर तद तद्भावके अपलापका आशय न बनाना चाहिए। तो तद्भाव और अतद्भावका मानना आवश्यक है। अब इसीका कुछ विवरण दृष्टान्तके साथ बता रहे हैं।

तदतद्भावनिबद्धो यः परिणामः सतः स्वभावतया।
तद्दर्शनमधुना किल दृष्टान्त पुरस्सरं वक्ष्ये ॥ ३२६ ॥

तद्भाव और अतद्भाव वस्तुमें स्वभाव निबद्ध-- तद्भाव और अतद्भाव से निबद्ध जो परिणाम है वह सद्भूत वस्तुके स्वभावसे ही है। वस्तु वहीका वही रहे यह भी वस्तुके स्वभावकी बात है, और वस्तु प्रतिक्षण नवीन नवीन अवस्थामें आये, जो थी वह न रहे, यह भी वस्तुके स्वभावकी ही बात है पदार्थ परिणमनशील है, इसका भाव यही होगा कि वहीका वही है और वहीका वही नहीं भी है। तभी तो परिणतनशीलताकी बात सिद्ध होगी और चूंकि यह बात शीलताके कारण है सो मानना होगा कि ये तद्भाव अतद्भाव वस्तुमें स्वभावसे निबद्ध हैं। एक वस्तुमें तद्भाव अतद्भाव दोनों परखे जाते हैं, इसको दृष्टान्त पूर्वक अब समझायेंगे और मुख्यतया जीवतत्त्वको ही दृष्टान्तमें लेकर इस विषयको समझायेंगे।

जीवस्य यथा ज्ञानं परिणामः परिणमंस्तदेवेति ।
सदृशस्योदाहृतिरिति जातेरनतिक्रमत्वतो वाच्या ॥ ३२७ ॥

तद्भाव अथवा सदृश परिणामका उदाहरण—जैसे कि जीवका ज्ञान परिणाम है, वह परिणमता हुआ वह ही है ऐसा परखमें आता है ना । ज्ञानने विविध पदार्थोंको जाना और क्रम क्रमसे भी जाना, जैसे कि छद्मस्थोंके ज्ञानमें क्रम होता है, अनेक पदार्थोंको जाना, पहिले कुछ पदार्थ जान रहे थे, अब कोई अन्य पदार्थ जान रहे हैं तो वहाँ जाननका परिणमन तो होता ही रहता है, तिसपर भी जाननपनेकी दृष्टिसे कहाँ अन्तर आया? वह भी ज्ञान ही परिणाम था, यह भी ज्ञान परिणाम है । तो जीवका ज्ञान परिणाम परिणमता हुआ भी वह ही है इस प्रकार परखा जाता है, अनन्तकाल तक परिणमन करते हुए ही सदा वही रहता है । इसमें ज्ञानत्व जातिका किसी भी समय उल्लंघन नहीं है । जो ज्ञान है, ज्ञाननपन है, जो शील है, प्रकृति है वह कभी भी दूर नहीं होता । तो देखो कि इस ज्ञान परिणाममें तद्भावकी बात बराबर बन रही है । इसे कहेंगे सदृश पक्षका उदाहरण । वह परिणाम जातिकी अपेक्षा सब सदृश ही चल रहा है । जैसे जाननपना था वहीका वही रहता है । कभी भी यह नहीं होता कि ज्ञान जाननपनेकी वृत्तिका त्याग कर किसी अन्य गुण परिणमन वृत्तिको अंगीकार करले तो यह ही तद्भाव है । जैसे कि इस जीवके ज्ञानके उदाहरणमें बताया है कि निरन्तर परिणमता हुआ भी ज्ञान ज्ञानत्व जातिका उल्लंघन नहीं कर रहा अतएव सदा वह ही है यह समझा जाता है ।

यदि वातदिति ज्ञानं परिणामः परिणमन्न तदिति यतः ।
स्वावसरे यत्सत्त्वं तदसत्त्वं परत्र नययोगात् ॥ ३२८ ॥

विसदृश पक्षका उदाहरण—अब देखिये ! विसदृश पक्षका उदाहरण । वही ज्ञान परिणाम परिणमता हुआ वह नहीं है, इस रूपसे भी तो निरखा जाता है । किसीने ५ मिनटमें २० पदार्थोंको क्रमसे जाना तो विवक्षित समयमें जिस पदार्थका जानन बन रहा था उस पदार्थका जानन अब तो नहीं है । तो अब यह नया ही जानन है । यदि नया जानन न हो तो जाननेमें भी कुछ न आये । यों समझ लेना चाहिए । तो वही ज्ञान परिणाम परिणमन करता हुआ बदलता है क्योंकि जिस समय का जो परिणाम है उसका उस समयमें जो सत्त्व है वह सत्त्व अन्य समयमें नहीं है । पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमें वे सब अवस्थायें विभिन्न विभिन्न हैं तो उन भिन्न अवस्थाओं के रूपमें वह परिणमन वह न रहा जो पहिले था । तो यहाँ अतद्भाव स्पष्ट विदित हो रहा है देखिये ! लोकव्यवहार ही मिट जायगा यदि अतद्भावकी बात न आये तो, मनुष्य बालक था, जवान हुआ, बूढ़ा हुआ, इन अवस्थाओंमें अतद्भाव भी तो है,

अन्यथा जवान, बूढ़े और बालक जैसी चेष्टा या अधिकार क्यों नहीं पा लेता ? तो अतद्भाव न माना जाय तो सारा लोकव्यवहार नष्ट हो जायगा और तद्भाव न माना जाय तब भी व्यवहार नहीं बन सकेगा। तो यहाँ सदृश परिणाम और विसदृश परिणामके उदाहरणमें छद्मस्थ जीवके ज्ञानकी बात कही है। किन्तु तदतद्भाव शुद्ध अशुद्ध सभी परिणामोंमें घटित होता है। अशुद्ध परिणाममें अतद्भाव सुगमतया विदित हो जानेसे यहाँ दृष्टान्तमें लिया है अब इन्हीं सदृश और विसदृश परिणामोंका विशेष स्पष्टीकरण कर रहे हैं।

अत्रापि च संदृष्टिः सन्ति च परिणामतोऽपि कालांशाः ।
जातेरनतिक्रमतः सदृशत्वनिबन्धना एवः ॥ ३२९ ॥

स्वजातिका अतिक्रम न करनेवाले कालांशोंकी सदृशत्वनिबन्धनता— तद्भाव और अतद्भावके सम्बन्धमें यह भी दृष्टान्तरूपसे समझियेगा कि परिणमनशील जितने भी कालांश हैं अपने-अपने समयमें जो जो अवस्थायें बनती हैं वे पदार्थके स्वकाल कहे जाते हैं और वे हैं एक-एक समयके अतएव कालाँश कहे जाते हैं। तो जितने भी कालांश हैं, जितनी भी अवस्थायें हैं वे सब अपनी-अपनी जातिका उल्लंघन नहीं करतीं अतएव वे तद्भावके ही हेतुभूत हैं और तद्भावके कारण ही यह बात बन रही है कि प्रत्येक पदार्थ कितना ही परिणमें, पर अपनी जातिका उल्लंघन न कर सकेंगे। तभी तो देखिये ! यह संसारी प्राणी कभी निगोद अवस्थामें था, जहाँ न कुछ जैसी दशा थी लेकिन वह नष्ट न हो सका था। तो आज कुछ प्रकाशित पर्यायमें आता है उस ही स्वभावके अनुरूप बात नजर आ रही है। तो जितनी भी अवस्थायें हैं कालांश हैं वे अपनी जातिका उल्लंघन नहीं करते। जिस पदार्थमें वह स्वकाल है उस पदार्थका जो स्वभाव है उस स्वभावसे विरुद्ध परिणमन न हो जायगा। विरुद्धका अर्थ है अत्यन्त विरुद्ध। जैसे चेतनका परिणमन अचेतनरूप न हो जायगा। रूप रस गंध, स्पर्शवान पुद्‌गलका परिणमन कहीं चेतना आदिक रूप न हो जायगा। तो सभी कालांश अपनी जातिका उल्लंघन नहीं करते, इस कारण वे सद्भावके ही हेतु हैं।

अपि नययोगाद्विसदृशसाधनसिध्यै त एव कालांशाः ।
समयः समयः समयः सोऽपीति बहुप्रतीतित्वात् ॥ ३३० ॥

प्रतिसमयके कालांशोंकी विसदृशत्वनिबन्धनता— अब अतद्भावका निदर्शन देखिये ! वे ही कालांश जो प्रतिसमय नवीन-नवीन हुए हैं वे पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे देखे जायें तो अतद्भावके कारण हैं क्योंकि वहाँ अलग-अलग समयके परिणमन हैं और वे परस्परमें विभिन्न भी हैं। तो प्रथम द्वितीय तृतीय समयादिकके

रूपसे उन अवस्थाओंकी जो एक समयसे भिन्न अन्य समयोंमें प्रतीति होती हैं उससे यह सिद्ध है कि पदार्थमें अतद्भाव है। जो था सो अब नहीं है। अब कुछ नवीन ही हुआ, इस तरह पदार्थमें तदभाव और अतदभाव गुम्फित है। जैसे कि सत् असत्, नित्य अनित्य, एक अनेक ये तीन युगल गुम्फित हैं। यों ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे तदभाव और अतदभाव भी वस्तुमें गुम्फित हैं। यों चार युगलोंसे युक्त वस्तु का स्वरूप परखा जाता है।

अतदिदमिहप्रतीतौ क्रियाफलं कारकाणि हेतुरिति।
तदिदं स्यादिह संविदि हि हेतुस्तत्त्वं हि चेन्मिथः प्रेम ॥३३१॥

तद्भाव व अतद्भावके माननेमें वस्तुत्वसिद्धिका कथन—यह असत् है अर्थात् यह वह नहीं है, इस प्रतीतिमें क्रिया, फल, कारण ये सब हेतु हैं और यह वही है, इस प्रतीतिमें शाश्वत् तत्त्वकी सिद्धि होती है। तात्पर्य यह है कि वस्तु है और निरन्तर परिणमती है और उसके परिणमनेका फल है। उसके लिए तो फल यह है कि स्वयंकी सत्ता बनाये रहे क्योंकि सत् होना ही वह है जो उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे युक्त हो और बाह्य फल यह है उसकी अर्थक्रियाका निमित्त पाकर अन्य विभाव परिणमनके योग्य उपादान अपनेमें विभाव परिणमन करते हैं, ऐसा परस्पर एक दूसरेका निमित्तपना भी है। एक ही वस्तुमें देखा जाय तो वस्तुकी उत्तर पर्यायोंका कारण पूर्व पर्याय संयुक्त वही पदार्थ है उत्तर पर्याय उसी पदार्थमें हुई इसलिए पदार्थको कारणतासे दूर नहीं किया जा सकता और पूर्व पर्यायके होनेपर उत्तर पर्यायकी योग्यता हुई और उत्तर पर्याय हुई अतएव पूर्व पर्यायको कारणतासे अलग नहीं किया जा सकता। यों उत्तर पर्यायका कारण पूर्वपर्याय है और उत्तर पर्याय पूर्व पर्यायका कार्यरूप है। इस तरहसे यह वह नहीं है इस कथनमें कारण और कार्यकी सिद्धि हो जाती है। वह नहीं, जो नहीं जो नहीं वह कारण थी, वह हुई है तब यह हुई। पूर्व पर्याय आये बिना उत्तर पर्याय कहाँसे आयगी? जिस पदार्थमें जो पर्याय उत्पन्न होनी है वह जिस पर्यायके बाद हो सकती है उस अवस्थाके आये बिना नहीं हो सकती। जैसे घड़ा बनता है तो माटीका पिण्ड रूप योग्य अवस्था बने ना, तो वह उत्तर पर्याय कहाँसे आयगी? यों उत्तर पर्याय कार्य है पूर्व पर्याय कारण है। यह बात तब ही तो समझी गई जब यह ज्ञान हुआ कि यह वह नहीं। इसमें यह तो है कार्य और वह है कारण, जिसका स्मरण वह शब्दसे किया है उसका व्यय कारण है। यों तदभाव व अतदभाव के माननेपर कार्यकारणकी सिद्धि है। और इसीमें फलकी भी बात है। क्रिया भी सिद्ध होती है, वस्तु पलटी तो यही तो जाना गया कि यह वह नहीं है याने वस्तु तो वही है पर अवस्था अब वह नहीं रही जो पहिले थी। तो इसमें पलटनेकी बात भी विदित होती है। उन्हीं बातोंको भेदबुद्धिसे विचारा जाय तो ये

तीनों तत्त्व जुदे-जुदे स्वरूपको रख रहे हैं। क्रिया नाम जिसका है उसीका है कारण और कार्यसे जिसका बोध होता है उसका ही बोध है। तो क्रिया भी, कारण भी, कार्य भी ये सब अपने-अपने स्वरूपको लिए हुए हैं क्योंकि पूर्व पर्याय और उत्तर पर्यायका काल जुदा-जुदा है। तो यों अतत्के कहनेसे क्रिया फल कारक सबकी सिद्धि होती है। व्यवहार भी बनता है, साथ ही उसमें शाश्वत तत्त्वरूप कहीं गया नहीं। मूल पदार्थ वही है, जिसकी अवस्थायें पलटी हैं। तो जब द्रव्यदृष्टिसे देखेंगे याने अभेदबुद्धिसे विचारेंगे तो द्रव्य अथवा गुण सब अभिन्न ही प्रतीत होंगे। पर्याय वस्तु से जुदा तो नहीं है अथवा कहो पर्यायका पुञ्ज ही तो वस्तु है। तो जब उस अभिन्न वस्तुको देखते हैं तो क्रिया कारण फल सब जुदे नहीं प्रतीत होते और उसके विरुद्ध दृष्टिमें प्रतीत भी न होंगे। यों वस्तु भेदाभेदात्मक नीतिसे परिज्ञात होता है और यह परिज्ञान तदभाव अतदभावके स्वीकार किये बिना हो नहीं सकता। अतः सत् असत् की तरह, नित्य अनित्यकी तरह, एक अनेककी तरह तत् अतत् भाव भी मानना पड़ेगा, तब वस्तुका पूर्ण परिचय हो सकेगा।

अयमर्थः सदसद्वत्तदतदपि च विधिनिषेधरूपं स्यात्।
न पुनर्निरपेक्षतया तद्द्वयमपि तत्त्वमुभयतया ॥ ३३२ ॥

सदसद्भावकी तरह तदतद्भावकी विधिनिषेधरूपता—उक्त कथनका सारांश यह है कि सत् और असत्के समान तत् और अतत् भी विधि निषेधरूप होता है। और, सत् असत्में यह व्यवस्था थी कि जब अभेदसे सत् देखा तब भेदसे देखा हुआ असत् है और अभेदसे जब देखा तो भेदसे देखा हुआ असत् है। तो विवक्षित प्रसङ्ग परस्पर विधि निषेधरूप होता है परन्तु ये सब बातें सापेक्ष दृष्टिमें हैं निरपेक्ष दृष्टिसे वे ऐसी नहीं हैं अर्थात् ये दोनों धर्म निरपेक्ष होकर रहे। जैसे कि मीमांसक वैशेषिक द्वारा अभिमत सामान्य और निरपेक्ष स्वतंत्र पदार्थ हैं इस तरहसे सत् असत् या तत् अतत् कुछ भी धर्म सप्रतिपक्ष दोनों निरपेक्षरूपसे रहें तो तत्त्वसिद्धि नहीं होती। जैसे सत्की विवक्षामें विवक्षित पदार्थ विधिरूप हैं तब अविवक्षित असत्रूप पड़ता है, इसी तरह तत् और अतत्की विवक्षासे भी उनमें यह बात नजर आती है। जब तत्को देखते हैं तो अतत् निषिद्ध हो गया और जब अतत् रूपसे देखते हैं तो तदभाव निषिद्ध हो गया। इतनेपर भी केवल उस दृष्टिमें ही यह विधि निषेध है उस द्रष्टाकी प्रतीतिमें तो दोनोंका ही बोध है। प्रमाणसे ग्रहण किये हुए पदार्थमें किसी विशिष्ट धर्मकी दृष्टिमें नयका बोध होता है वहाँ भी यह विशेषता है कि विधिनिषेध की अपेक्षा रखता है। और निषेध विधि की अपेक्षा रखता है। तो सर्वथा स्वतंत्र उनमेंसे कोई न रह सकेगा। पदार्थ स्वयं सद्सदात्मक है, विधि निषेधात्मक है। कोई पदार्थ है तो उसका अस्तित्व तभी तो है जब कि वह अन्य कुछ न हो। कोई

पदार्थ है तो इस है की दृष्टिमें जिस प्रकार निरखा गया है उसी प्रकारसे तो है अन्य प्रकारसे नहीं है। जब अभेदसे देखा तो अभेद रूप वस्तु है। भेद रूप दृष्टिमें ही नहीं है, उसकी अपेक्षा असत् है। तो यों पदार्थ सदसदात्मक है, विधि निषेधात्मक है। अतः सप्रतिपक्ष दोनों धर्म निरपेक्ष रूपसे न रहेंगे, सापेक्षरूपसे दोनोंका अवगम हो सकेगा।

रूपनिदर्शनमेतत्तदिति यदा केवलं विधिर्मुख्यः।
अतदिति गुणो पृथक्त्वात्तन्मात्रं निरवशेषतया ॥ ३३३ ॥

तद्भावकी दृष्टिमें तन्मात्रताका दर्शन—उक्त सारांशको कुछ विशेष विवरणके साथ कह रहे हैं, विधि निषेधकी परस्पर सापेक्षतामें यह विशेषता है कि जिस समय केवल विधि मुख्य की गई हो, तद्भाव किया गया हो उस समय अतद्भाव अथवा निषेध कथन गौण हो जाता है क्योंकि विधि निषेध जुदे तत्त्व हैं जब विधि विवक्षा है उसमें केवल विधिरूप ही वस्तु प्रतीत होती है पर जो द्रष्टा पुरुष है उसकी प्रतीतिमें दोनों ही बातें हैं, जब कोई पुरुष कमरेकी एक दीवाल देख रहा है, तो जिसे देख रहा है उसीका तो नक्शा है। कैसा रंग है, कैसा चित्र है कैसा ढङ्ग है वह सब उसी भींटका ही तो ज्ञात होगा, दूसरेका नहीं, लेकिन उस पुरुषको यह प्रतीति नहीं है कि दूसरी भींट, अन्यथा कमरा कैसे टिकता ? तो यों ही उस दृष्ट पुरुषकी प्रतीति में दोनों ही धर्म उस दृष्टिमें है, अन्य दृष्टिका नहीं। तो जो भी विवक्षित हो वह हो जाता है मुख्य और अविवक्षित होता है गौण। यों जब तद्भावकी मुख्यताकी हो तो तद्भाव गौण हो जाता है और उस समय पदार्थ केवल तद्भावमात्र ही प्रतीत होता है।

अतदिति विधिर्विवक्ष्यो मुख्यः स्यात् केवलं यदादेशात्।
तदिति स्वतो गुणत्वादविवक्षितमित्यतन्मात्रम् ॥ ३३४ ॥

अतद्भावकी दृष्टिमें अतन्मात्रका दर्शन—जिस प्रकार तद्भावकी दृष्टि में वस्तु तन्मात्र है और तद्भाव भी मुख्य है तथा अतद्भाव गौण हो जाता है उस ही प्रकार जब अतद्भाव विवक्षित होता है तब उस दृष्टिमें अतद्भाव मुख्य हो जाता है। उस दृष्टिमें तद्भाव अविवक्षित है और गौण है ऐसे अतद्भावकी विवक्षामें पदार्थ अतन्मात्र प्रतीत होता है। वहाँ तन्मात्र नहीं समझा जा रहा है। विधि निषेध का यही एक निर्दोष है। सारांश यह है कि भेद विवक्षामें वस्तु भिन्न भिन्नरूप से प्रतीत होतीं है। पदार्थमें द्रव्य है, गुण है, पर्याय है, ये सब प्रतीत होते हैं और भेद विवक्षामें पदार्थ एकरूपसे प्रतीत होता है। दृष्टाकी दृष्टिमें जैसा आशय है उसके

अनुरूप वस्तुका दर्शन हुआ करता है और प्रमाण विवक्षामें वह उभयात्मक प्रतीत होता है।

शेषविशेषाख्यानं ज्ञातव्यं चोक्तवक्ष्यमाणतया।
सूत्रे पदानुवृत्तिर्ग्राह्या सूत्रान्तरादिति न्यायात् ॥ ३३५ ॥

तदतद्भावके प्रसङ्गमें पूर्वकथित शेष व्याख्यानका सङ्केत यह प्रसङ्ग चल रहा है अनेकान्तात्मक वस्तुका परिज्ञान करनेका और अनेकान्त ज्ञानकी सिद्धि का। वस्तु चार युगलोंसे गुम्फित है, तो स्यात् सत् असत् है, स्यात् नित्य अनित्य है, स्याद् एक अनेक है, स्यात् तत् अतत् है और ये चारों ही युगल द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव से घटित होते हैं। इस प्रकरणमें वस्तुका यह स्वरूप दिखाया गया है, सो जो अभी प्रसङ्ग चल रहा है इसमें जो बात शेष रह गई हो वह पूर्वकथित प्रकरणसे समझ लेना चाहिए क्योंकि उसी सिल्सिलेमें यह प्रसङ्ग है, और वस्तु स्वरूपको देखनेकी यही पद्धति है। कभी किन्हीं दार्शनिकोंने कोई एकान्त दर्शन भी पकड़ लिया तो वहाँ भी वही पाया जायगा। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको। जो चार युगलोंकी बात निरखी जाती है उसमेंसे किसी ही एक बातको मुख्य करके अथवा आग्रह करके ही अन्यका निषेध करके रह गए तब एकान्त दर्शन प्रकट हुआ है। सभी दर्शनोंमें चाहे एकान्त हो चाहे अनेकान्त हो बात आयगी तो द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव इन चार युगलोंके सम्बन्ध में। यदि इनमेंसे कोई अंश ही माना तो एकांत हो जाता है, और जहाँ सबकी प्रतीति की हो वहाँ अनेकान्त ज्ञान प्रकट होता है।

ननु किं नित्यमनित्यं किमथोभयमनुभयं च तत्त्वं स्यात्।
व्यस्तं किमथ समस्तं क्रमतः किमथाक्रमादेतत् ॥ ३३६ ॥

जिज्ञासुका प्रथम प्रश्न वस्तु नित्य है या अनित्य?–अब यहाँ वस्तु स्वरूप के विषयमें कुछ प्रश्न किये जा रहे हैं जिनका कि सम्बन्ध स्याद्वादसे है। प्रथम प्रश्न यह है कि वस्तु क्या नित्य है अथवा अनित्य है? पदार्थके सम्बन्धमें अनेक दार्शनिकों की एक एक धारणा रहती है। जिनकी दृष्टिमें वस्तु नित्य समझमें आया उनको वस्तु नित्य ही विदित होता है। जब कभी उनसे प्रश्न किया जाय कि फिर ये दिखने वाले पदार्थ, ये दृश्यमान लोग जो कि विनाशीक नजर आते हैं, फिर ये अनित्य कहाँ रहे? तो उनका उत्तर होता है कि परमार्थ तत्के अतिरिक्त कोई माया है प्रकृति है, किन्हीं शब्दोंसे कहो आखिर दूसरी बात मालूम होती है। वे यों दूसरी बात मानकर तत्त्वकी रक्षा करना चाहते हैं पर स्वयं वस्तुमें ये दोनों रूप हैं, इस सम्बन्धको नहीं परख पाते तो किन्हीं दार्शनिकोंकी दृष्टिमें वस्तु नित्य है तो किन्हीं दार्शनिकोंने इन अवस्थाओं

पर मुख्यतया दृष्टि की है, और इन परिणमनोंसे ही निरखा तो उस ओरसे अनित्य देखा तब उनका एकान्त बन गया कि वस्तु अनित्य ही है। जो देखा वह पहिले न था जो देखा वह आगे भी न रहेगा, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। इस कारण यह दृष्टि बनी कि वस्तु अनित्य ही है। तो जब दार्शनिकोंकी ये भिन्न भिन्न दृष्टियाँ हैं तो एक समाधान चाहने वाला जिज्ञासु प्रश्न करता है कि वास्तविकता क्या है? क्या वस्तु नित्य है अथवा अनित्य है?

जिज्ञासुका नित्यानित्यत्वके सम्बन्धमें द्वितीय प्रश्न—अब उक्त संशयके समाधानमें कुछ दार्शनिक दोनों बातें बताते हैं कि वस्तु उभयरूप है। उभयरूप बताकर कुछ भी दार्शनिक इस प्रकार स्वतंत्र मान बैठते हैं कि कोई वस्तु नित्य होती है और कोई वस्तु अनित्य होती है। एक ही वस्तुमें नित्यत्व और अनित्यत्व धर्म न मान कर यों समझते हैं कि जैसे चन्द्रसूर्य आदिक पदार्थ नित्य हैं, ये सदा ज्योंके त्यों रहते हैं और यहाँके घर मकान आदिकको निरखकर जो बनता है और गिर जाता है, टूटता है ऐसे पदार्थोंको कह देते हैं कि अनित्य हैं। तो यों स्वतंत्ररूपसे कुछ लौकिक जन किन्हीं चीजोंको नित्य कह देते हैं और किन्हीं चीजोंको अनित्य कह देते हैं, इस तरहसे उभयरूप मानते हैं। अथवा कोई दार्शनिक एक ही वस्तुको किसी दृष्टिसे नित्य है, किसी दृष्टिसे अनित्य है ऐसा जानकर उभयरूप कह देते हैं। कुछ दार्शनिक जब इस चर्चामें चलते हैं तो उसका अन्त: निरीक्षण करते हैं, जहाँ फिर ये दोनों रूप भी समझमें नहीं आते, अथवा इन दोनों रूपसे किसी एक शब्दमें नहीं बोल सकते। इस कारण वे वस्तुको अनुभयरूप कह देते हैं। तो नित्यानित्यत्वके सम्बन्धमें समाधान चाहने वाला जिज्ञासु यहाँ यह पूछ रहा है कि पदार्थ नित्यानित्यात्मक है अर्थात् उभय रूप है अथवा अनुभय याने नित्य भी नहीं और अनित्य भी नहीं, क्या इस तरह दोनों धर्मोंसे रहित है पदार्थ? यों द्वितीय प्रश्नमें पूछा गया है।

जिज्ञासुका तृतीय प्रश्न वस्तु व्यस्तरूप है या समस्तरूप?—अब तृतीय प्रश्नमें यह पूछा जा रहा है कि पदार्थ क्या व्यस्तरूप है या समस्तरूप है? जब कुछ किन्हीं दार्शनिकोंको समझमें आया कि प्रत्येक पदार्थ अणु अणुमात्र है और उनका संघात भी नहीं होता, मिलान भी नहीं होता। जैसे कि क्षणिक एकान्त मानने वाले दार्शनिक अथवा कहो निरंशवादी पदार्थको अंशमात्र ही सर्वस्व मानते हैं और उनकी दृष्टिमें केवल एक प्रदेश, केवल एक समय वाला, केवल एक डिग्री वाला ही पदार्थ होता है। उनको मिलाकर अनेक डिग्री वाला संघात बनाना अथवा अनेक प्रदेशोंसे घिरे हुए पिण्ड बनना यह सब एक आरोपन है, उपचारसे है, यों निरखना कि दृष्टिसे है। वस्तुत: तो एक अंशमात्र है ऐसा मानने वाले दार्शनिक पदार्थको व्यस्तरूप मानते हैं। तो कुछ दार्शनिक ऐसे हैं कि अत्यन्त जुदे-जुदे भी पदार्थ पड़े हों जिनके बीच अन्तराल भी पड़ा हुआ हो लेकिन ऐसे भी भिन्न-भिन्न प्रथक-प्रथक अवस्थित

पदार्थोंको एक समस्तरूपमें मानते हैं। तो ऐसी दो धारायें जब चलती रहती हैं तो समाधान चाहने वाला जिज्ञासु यहाँ प्रश्न कर रहा है कि वस्तु व्यस्तरूप है या समस्तरूप है ?

जिज्ञासुका चतुर्थ प्रश्न वस्तु क्रम पूर्वक है या अक्रमपूर्वक— वस्तुका जो कुछ भी दृष्य नजर आ रहा है उन दृष्योंमें वही क्रम देखा जा रहा है,–कहीं सब एक साथ देखा जा रहा है। अवस्थायें क्रमसे हुआ करती हैं, शक्तियाँ सब एक साथ रहा करती हैं, अथवा परिणतियोंके ही सम्बन्धमें दो प्रकारके ख्याल होते हैं। एक ख्यालमें तो ये परिणतियाँ क्रमपूर्वक जब जो बात होनी है तब वही होती है और इस सिद्धान्तसे उन सब परिणतियोंमें क्रम बन गया है। किस परिणतिके बाद कौन सी परिणति होगी ? इस तरह अनन्त काल तककी परिणतियोंका क्रम भी पड़ा हुआ है, तो कुछ दार्शनिकोंका अभिमत है कि परिणतियोंमें क्रम नहीं है। जब जिस कारण मिले, जिस प्रकारकी शक्ति हो पदार्थमें, परिणमनेमें, उस वातावरणमें उस प्रकार परिणम जाता है यों कुछ सोचना है कि ये सब बातें अक्रम पूर्वक हैं, आदिक अनेक पद्धतियोंमें क्रमपूर्वकता और अक्रमपूर्वकता दृष्ट होती है। उस सम्बन्धमें समाधान चाहने वाला जिज्ञासु प्रश्न करता है कि वस्तु क्या क्रम पूर्वक है या अक्रम पूर्वक ? काल क्रम रखता है क्षेत्रक्रम रखता है अथवा किसी प्रकारका क्रम नहीं रखता है। यों यहाँ चार युगलोंका प्रश्न किया जा रहा है। उनमें यह चतुर्थ युगल पूछा गया है कि वस्तु क्रमपूर्वक है अथवा अक्रमपूर्वक है ? इन उक्त चार प्रकारकी जिज्ञासाओंका समाधान देनेके लिए अब कहते हैं।

सत्यं स्वपरनिहत्यै सर्वं किल सर्वथेति पदपूर्वम् ।
स्वपरोपकृतिनिमित्तं सर्वं स्यात् स्यात्पदाङ्कितं तु पदम् ॥३२७॥

जिज्ञासुके प्रश्नोंके समाधानकी कुञ्जी—उक्त शङ्काके समाधानमें कहा जा रहा है कि जो कुछ प्रश्न पूछे गए हैं ऐसी जिज्ञासा करना वास्तवमें जिज्ञासुकी ठीक है, पर उनमें समाधान यह पड़ा हुआ है कि यदि उनके पहिले सर्वथा पद लगा दिया जाता तब तो वह विरुद्ध पड़ जाता। अपने का भी विघातक हो गया और दूसरोंका भी विघातक हो जाता है। जैसे कह दिया कि सर्वथा नित्य है तो सर्वथा नित्य कहनेपर नित्य भी सिद्ध न होगा और अनित्य भी सिद्ध न होगा। इन सब बातों का विशेष वर्णन दार्शनिक ग्रन्थोंमें यथायोग्य कह देनेके प्रकरण आते हैं पर संक्षेपरूप में यह समझलें कि यदि वस्तु सर्व प्रकारसे अपरिणामी है तो ऐसे कथनमें वस्तु ही सद्रूप न रहेगी। जब सत् ही न रहा तो नित्य क्या ठहरे ? चले तो अनित्यका विघात करने पर हो गया नित्यका ही विघात। तो यों ही ऐसे सप्रतिपक्ष धर्मके

सम्बन्धमें यदि पहिले सर्वथा शब्द लगा दिया जाता है तो वह वाक्य, वह वाक्य स्व और पर दोनोंका विनाश करने वाला है, और यदि उस कथनको स्यात् पदसे अंकित कर दिया जाय कि कथंचित् नित्य है, कथंचित् अनित्य है, अथवा इस दृष्टिसे नित्य है और इस दृष्टिसे अनित्य है। तो इस कथनमें स्वका भी उपकार है और परका भी उपकार है। जिस धर्मको कहा जा रहा है उस धर्मकी भी वहाँ सिद्धि नहीं है और द्वितीय धर्मकी भी सिद्धि है। जैसे कहा गया कि वस्तु द्रव्य दृष्टिसे नित्य है तो उसके साथ यह भी सिद्ध होता है कि कोई अन्य दृष्टि भी है जिसमें अनित्य है अर्थात् पर्याय दृष्टिमें अनित्य है, तो यों दोनों ही बातें सिद्ध होती हैं। तो यह प्रश्न स्यात् पदको अङ्कित कर देनेपर स्वयं सुलझ जाता है। सारांश यह है कि सर्वथा नित्य, सर्वथा अनित्य उभय सर्वथा व्यस्त सर्वथा सक्रम आदिक कुछ भी कहनेपर वह कथन विरुद्ध होता है और स्यात् पद लगाकर कथन करें। अपेक्षा और दृष्टिको कहकर बताया तो वह सब कथन यथार्थ हो जाता है।

अथ तद्यथा यथा सत् स्वतोऽस्ति सिद्धं तथा च परिणामि।
इति नित्यमथानित्यं सच्चैकं द्विस्स्वभावतया ॥ ३३८ ॥

वस्तुमें स्वतः सिद्धताकी दृष्टिसे नित्यत्व व परिणामिताकी दृष्टिसे अनित्यत्व—उक्त समाधानका ही विवरण करते हुए इस कथनमें कह रहे हैं कि वस्तु जिस प्रकार स्वतः सिद्ध है उसी प्रकार वह परिणमनशील तो है याने पदार्थमें ये दो बातें परखी जा रही हैं। पदार्थ स्वतः सिद्ध होनेपर भी है निरन्तर परिणमनशील अर्थात् उसमें नवीन अवस्थाका उत्पाद हुआ और पूर्व अवस्थाका व्यय हुआ और पदार्थ वहीका वही बना रहे ऐसी प्रकृति प्रत्येक पदार्थमें है। तो जब पदार्थके सम्बन्धमें यह समझा गया कि पदार्थ स्वतः सिद्ध है और परिणमनशील है, तो इस समझमें दो बातें आयीं कि वह एक ही सत दो स्वभाव वाला है अर्थात् सत्में स्वतः सिद्धता है और परिणमनशीलता है। तो जब स्वतः सिद्धताके रूपमें देखते हैं तो वहाँ विदित होता है कि वह नित्य है, क्योंकि वह स्वतः सिद्ध है। किसी परसे नहीं उत्पन्न हुआ है तो मानो उत्पन्न ही नहीं हुआ है और जो स्वतः सिद्ध है उसके विनाशका भी कोई हेतु नहीं है। यदि औपाधिक भाव है जिसे परतः सिद्ध कह सकते हैं तो परके निमित्तके न रहनेपर उसका अभाव हो जाता है। तो जो स्वतः सिद्ध है वह आदि अन्त रहित है अतएव नित्य है। जब पदार्थोंकी परिणमनशीलतापर दृष्टि देते हैं तो चूंकि वह परिणमनशील है, प्रतिसमय नवीन नवीन परिणमनसे परिणमता है तो स्पष्ट ही अनित्य सिद्ध हो जाता है। तो यों अपेक्षा दृष्टिसे वस्तु नित्य है।

अयमर्थो वस्तु यदा केवलमिह दृश्यते न परिणामः।
नित्यं तदन्वयादिह सर्वं स्यादन्वयार्थनययोगात् ॥ ३३९ ॥

स्वतः सिद्धताकी दृष्टिमें विवक्षितता व अविवक्षितताका प्रभाव— स्यात् पद करके मुद्रित वक्तव्य सही हो जाता है। इस समाधानकी पुष्टिमें ही कहा जा रहा है कि देखिये ! वहाँ हुआ क्या ? कि जब स्वतः सिद्धकी दृष्टिसे देखा और जब परिणमन शीलताकी दृष्टिसे देखा तो विदित हुआ क्या ? जिस समय केवल वस्तु दृष्टगत् होती है, स्वतः सिद्धताकी दृष्टिमें केवल एक वस्तु दृष्टगत् है तो वहाँ पर्याय दृष्टगत् नहीं है, जब कि द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा हुई। तो यों द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे वस्तु नित्य सिद्ध होती है। क्योंकि वस्तु सामान्यका कभी भी नाश नहीं होता तो वस्तु सामान्य ही परखा जा रहा है द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिमें तो उत्तर यह हुआ कि द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिसे वस्तु नित्य है, अर्थात् उसका कभी भी विनाश न होगा और न कभी उसका उत्पाद हुआ था। वह तो अनादि अनन्त है।

अपि च यदा परिणामः परिणामः केवलमिह दृश्यते न किल वस्तु।
अभिनवभावानभिनवभावाभावादनित्यमंशनयात् ॥ ३४० ॥

परिणामिताकी दृष्टिमें विवक्षितता व अविवक्षितताका प्रभाव— जैसे द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिमें आत्मा दृष्टगत् न हुआ और वस्तु नित्य सिद्ध हुई, उसी प्रकार जब पर्यायार्थिकनयकी दृष्टि होती है तो उस समय केवल पर्याय दृष्टिमें रहती है। जो शाश्वत् अनादि अनन्त वस्तु है वह दृष्टिमें नहीं रहता उस समय पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे वस्तु अनित्य सिद्ध होती हैं, क्योंकि जहाँ परिणमनशीलता देखी, पर्याय निरखी गई तो यही तो देखा गया कि प्रतिसमय नवीन पर्यायका उत्पाद हुआ और पुरानी पर्यायका विनाश हुआ है। तो इसीका नाम तो अनित्य है। तो पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमें केवल पर्याय दृष्टगत् है। शाश्वत वस्तु दृष्टगत् नही हैं। तब इस अपेक्षासे पदार्थ अनित्य है। यों दृष्टिकी अपेक्षा वस्तु नित्य और अनित्य दोनों रूप विदित होता है।

क्रमार्पितकी अपेक्षा वस्तुकी उभयरूपता जिज्ञासुका दूसरा प्रश्न है कि वस्तु क्या उभयरूप है या अनुभयरूप ? अर्थात् वस्तु नित्य और अनित्य दोनों प्रकार की है या न नित्य है न अनित्य है ? उभयरूपपनेकी शङ्का वैशेषिक मतकी खोज करती है, जैसे वैशेषिक सिद्धान्तमें कोई पदार्थ नित्य ही होता है कोई अनित्य ही तो यों पदार्थ दोनों प्रकारके होते हैं ? क्या इस प्रकारसे वस्तु उभयरूप है अथवा वस्तु अनुभयरूप है ? जैसे कि शून्याद्वैतवादी वस्तुको शून्य मानते हैं, अब वह शून्य न नित्य है न अनित्य, क्या इस तरहसे वस्तु अनुभय रूपादिकरूपमें यह प्रश्न घटित होता है ? समाधान इसका यह है कि यदि सर्वथा शब्द लगाकर प्रश्न हो तो लगता है और कथंचित स्यात शब्दकी मुद्रामें प्रश्न हो तो यह समीचीन है। वस्तु सर्वथा उभयरूप

है, यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि वस्तु जो नित्य है वह सर्वथा ही नित्य है वस्तु जो अनित्य है वह सर्वथा अनित्य है, ऐसे कथनमें जो नित्य अनित्यके सम्बन्धमें आपत्तियाँ इस उभयपक्षमें भी आती हैं, क्योंकि यहाँ निरपेक्षरूपसे यह पक्ष मानते हैं। तब घटित यह करना चाहिये कि वस्तु कथंचित् उभयरूप है - जिस समय क्रमसे अर्पित नित्य और अनित्यकी विवक्षा होती है वहाँ वस्तु उभयरूप है।

सहार्पित दृष्टिसे वस्तुकी अनुभयरूपता — यदि क्रम अर्पित दृष्टि न होकर एक दृष्टि हो अथवा सह अर्पित दृष्टि हो तो उन दृष्टियोंमें वस्तु उभयरूप नहीं है। साथ ही यह समझना चाहिये कि कोई वस्तु नित्य है कोई अनित्य है ऐसी बात नहीं है, किंतु प्रत्येक वस्तु नित्यानित्यात्मक है, क्योंकि वह स्वत: सिद्ध है और परिणामी है। उस ही वस्तुके सम्बन्धमें स्वत: सिद्धता और परिणामिता एक समयमें है। इस कारण एक ही वस्तुमें उभयात्मकता है और वह है क्रमार्पित द्रव्य और पर्यायकी दृष्टिसे। इसी प्रकार वस्तु उभयरूप है। इस सम्बन्धमें भी सर्वथा शब्द लगानेपर तो मिथ्या है और स्यात् शब्द लगाकर यह क्रम बनता है, वस्तु स्यात् अनुभयरूप है। जब एक ही साथ द्रव्य और पर्याय दृष्टिसे निरखा जाता है तो वहाँ वस्तु अनुभय है कहनेमें अशक्य है, इस कारण अवक्तव्य माना है। नित्य है, न अनित्य है, जो है वह समझमें आया है।

दृष्टिभेदसे वस्तुकी व्यस्तरूपता व समस्तरूपता — जिज्ञासुका दूसरा प्रश्न है - ? क्या वस्तु व्यस्त रूप है या समस्त रूप है ? व्यस्त रूप है, इसका भाव यह है जैसे कि वैशेषिक सिद्धान्तमें द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य विशेष ये सब स्वतंत्र तत्व हैं, क्या इस प्रकार वस्तु व्यस्तरूप है अथवा जैसे निरंशवादमें वस्तुको एक एक क्षेत्री एक एक निरंशभावको माना गया है, क्या इस तरह वस्तुस्वरूप है ? दूसरा उसमें ही प्रश्न है—क्या समस्तरूप है ? जैसे कि अद्वैतवादी सबको एक अद्वैत मानते हैं, क्या इस तरह समस्तरूप है ? समाधान इसका यह है कि सर्वथा शब्द लगाकर इसका हल किया जाय तो मिथ्या है और स्यात् शब्द लगाकर इस समस्याको सुलझाया जाय तो यह सम्यक है। वस्तु है वस्तुरूप है, कथंचित् जो उसका चतुष्टय है उससे निहारनेपर प्रत्येक जीव अलग-अलग है, प्रत्येक वस्तु अलग-अलग है। एक मिलकर भी एक पिण्डमें होनेपर भी पदार्थ अलग-अलग ही है। यों कथंचित् व्यस्त रूप है अथवा जब उसके समझनेकी दृष्टि की जाती है तो द्रव्यमें और और भी धर्म पाये जाते हैं, उन सब धर्मोंका विचार चलता है। तो जब किसी धर्मका स्वरूप निरखा जारहा है तो उस स्वरूप दृष्टिमें वह वस्तु अलग है। यों एक ही पदार्थमें रहने वाले गुण पर्याय अनेक धर्म अपने अपने स्वरूपसे न्यारे-न्यारे हैं अर्थात् उनका स्वरूप स्वलक्षण जुदा है, उस दृष्टिसे व्यस्तरूप है लेकिन यह सर्वथा नहीं लगाया जा सकता क्योंकि वस्तु कथंचित् समस्तरूप भी है। द्रव्य, गुण, पर्याय सामान्य, विशेष

ये सब कोई पृथक पृथक क्षेत्रमें स्वतन्त्र स्वतन्त्र सत्ता लिए हुए नहीं हैं, किंतु एक ही पदार्थ हैं सामान्यरूपसे, विशेषरूपसे, गुणरूपसे, परिणतिरूपसे निरखा जा रहा है। इस कारण इन सब व्यस्त धर्मोंका पुञ्ज ही वह एक पदार्थ है। यों कथंचित् वस्तु व्यस्तरूप है और कथंचित् वस्तु समस्तरूप है।

दृष्टिभेदसे वस्तुकी क्रमपूर्वकता व अक्रमपूर्वकता—जिज्ञासुका चौथा प्रश्न था कि वस्तु क्रमपूर्वक है या अक्रमपूर्वक है? इससे यह दृष्टि की गई है कि जैसे शब्दाद्वैतवादमें समग्र पर्यायें एक सत्में मौजूद हैं और वे सब अक्रमपूर्वक हैं तो एक ही समयमें सबमें सब मौजूद हैं, अथवा वस्तुमें पर्यायें क्रमसे व्यक्त होती हैं उनकी धारा है, उनका क्रम है। यों किस प्रकार वस्तु है? इस सम्बन्धमें वस्तु शब्दसे पर्याय को मुख्यतया लक्षित किया गया है। इसका भी समाधान यह है कि सर्वथा शब्द लगाकर इसकी खोज की जाती है तो यहाँ सर्वथा क्रमपूर्वक अथवा सर्वथा अक्रमपूर्वक ये दोनों सिद्धान्त मिथ्या होते हैं। जब स्याद शब्द लगाकर इसे कहा जाता है तो यह बात सम्यक् हो जाती है। वस्तु किसी दृष्टिसे क्रमपूर्वक है। जो पर्याय जब होनी है वह सब प्रभुके ज्ञानमें विदित है। अथवा यह जो विशिष्ट ज्ञानियों द्वारा विदित है इस कारण वह सब क्रमपूर्वक हैं अथवा पर्यायें जितनी होती हैं उन पर्यायों रूपसे जब वस्तुका ज्ञान किया जाता है तो वस्तु क्रमपूर्वक है और जब गुणोंकी दृष्टिसे वस्तुका ज्ञान किया जाता है तब वह अक्रमपूर्वक है। गुण दृष्टिमें प्रत्येक वस्तु गुण मात्र है, तो इस प्रकारकी वस्तुवें अर्थात् सभी गुण पदार्थोंमें अक्रमसे एक ही साथ रहते हैं। यों वस्तु शक्ति दृष्टिसे अक्रमपूर्वक है। जिज्ञासुके अनेक प्रश्न हो सकते हैं उनके समाधान विवक्षासे हो जाते हैं। वस्तु नित्यादिक अनेक धर्मात्मक है मगर वह किस प्रकार है उसका यहाँ समर्थन किया गया है। वस्तु सर्वथा किसी एक धर्मरूप नहीं कहा जा सकता अपेक्षा दृष्टिसे वस्तु सभी प्रकारसे वर्णित किया जा सकता है।

★